उल्लसित ज्ञान का नाम नृत्य है, नृत्यत ज्ञान का नाम रस है। अपना ज्ञान स्वरूप आत्मा जब आनन्द में मग्न होकर स्वातंत्र्येण नृत्य करता है, तब आध्यात्मिक-रस का अनुभव होता है- आनन्द-ही-आनन्द! बाहर आनन्द, भीतर आनन्द! आगे आनन्द, पीछे आनन्द! ऊपर आनन्द, नीचे आनन्द! आनन्द का समुद्र, आनन्द की लहर, आनन्द की बौछार, आनन्द की हवा, आनन्द की तरंग, आनन्द का कण, आनन्द का स्पर्श, आनन्द की ध्वनि! नारायण, इसमें समाज की, कानून की, हकदारी की कोई व्यवस्था नहीं क्योंकि यह तो अपना आपा ही है। इसी आनन्द की पराकाष्ठा का नाम 'श्रीकृष्ण' है, 'ब्रह्म' है, 'आत्मा' है।

'रसो वै सः'।

आज का सत्सङ्ग

2017

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

आज का सत्सङ्ग

2017

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

संकलन
आनन्द प्रस्तुति ऑडियो विजुअल सेंटर
वृन्दावन

30वें आराधन महोत्सव के पावन पर्व पर

त्वदीय वस्तु गोविन्द !
तुभ्यमेव समर्पयेत् ।

आनन्द प्रस्तुति ऑडियो विजुअल सेंटर
आनन्द वृन्दावन, वृन्दावन
द्वारा
वितरणार्थ प्रकाशित

मुद्रण–संयोजन
श्रीहरिनाम प्रेस, लोई बाजार, वृन्दावन–281121
दूरध्वनि : 7500987654

शुभाशंसा

पिछले 2 वर्षों की भाँति इस वर्ष भी परमपूज्य महाराजश्री के **'आराधन -महोत्सव'** पर उनकी अमृतमयी वाणी-सदुपदेशों का यह अद्भुत संकलन **"आज का सत्सङ्ग-2017"** आनन्द प्रस्तुति ऑडियो विजुअल सेंटर द्वारा प्रसादी पुस्तिका के रूप में प्रकाशित एवं वितरित किया जा रहा है।

इस प्रसादी पुस्तिका में ग्रथित नानाविध धर्म, व्यवहार, भक्ति एवं वेदान्त के अद्भुत रत्नों के संकलन का श्रेय सुश्री साध्वी कंचन को है एतदर्थ उनको साधुवाद है!

मैं आशा करता हूँ कि सुधी पाठक संकलित प्रसंगों का पठन-मनन कर अपने में धन्यता का अनुभव करेंगे।

विनयावनत

सच्चिदानन्द

विषय सूची

मङ्गलाचरण

नभो भवतु सत्पथं श्वसितु विश्ववायुर्बलं
विचित्ररसचित्रणैः स्फुरतु रश्मिमाली चिरम्।
सुधाम्बुधिरुदञ्चतात् प्रहवतान्मही सौरभं
चकासति सुखार्णवे मयि निसर्गमाविभ्रतु।।

'आकाश सद्वस्तुओं का मार्ग बने। विश्व वायु बल का संचार करे। रश्मिमाली विचित्र रसमय चित्रनिर्माण के द्वारा चिरकाल तक चमके। सुधा-समुद्र तरंगायमान रहे। पृथिवी सौरभ को प्रवाहित करे। मैं स्वयं सुखसमुद्र सम्पूर्ण सुषमा को धारण कर रहा हूँ। सब मेरी स्फूर्ति से अपने-अपने स्वभाव को परिपुष्ट कर लें।'

[पूज्य 'महाराजश्री' की रचना 'आत्मोल्लास' में से]

:: 1 ::

भागवत-धर्म की अपूर्वता

भगवान् जीवों को संसार में भेजते हैं तो उनके लिये ऐसा उपाय कर देते हैं कि वे फिर से लौटकर जब चाहें तब, भगवान् के पास आजायें। जैसे कोई अपने बच्चे को विदेश भेजता है तो उसको लौटने के लिये किराया दे देता है, रास्ता बता देता है और जहाँ वह जाये वहाँ फँस न जाये, निकल आये-ऐसा उपाय भी कर देता है, वैसे ही भगवान् जीवों को संसार में भेजते हैं तो ऐसी व्यवस्था कर देते हैं कि जब उसकी मर्जी हो तब वह लौटकर उनके पास आ जाये। भगवान् तरतीब, तरीका, रास्ता-सब कुछ बताकर जीवों को संसार में भेजते हैं। भगवान् अपने बच्चे को सुख से रहने के लिये, आराम से लौट आने के लिये जो उपाय बताते हैं, युक्ति प्रदान करते हैं, उसी का नाम 'भागवत-धर्म' होता है। भागवत माने जीवों के कल्याण के लिये भगवान् का बताया हुआ धर्म, रहनी। भगवान् ब्राह्मण-चाण्डाल आदि का विचार करके अपना धर्म नहीं बताते, उनका बताया धर्म सबके लिये होता है। यहाँ तक कि पशु भी, पक्षी भी, कीड़े-मकोड़े भी भगवान् के बताये हुये रास्ते पर चल सकते हैं और भगवान् से मिल सकते हैं। विशेष करके जो मूर्ख हैं, अज्ञानी हैं, पिछड़े हुए हैं, उनके लिये भगवान् ने अपनी ओर से जो उपाय बताया है, धर्म बताया है, उसी का नाम 'भागवत- धर्म' होता है।

इसलिये इस धर्म में शक करने का कोई कारण नहीं है। दूसरी बात यह है कि जो पढ़े-लिखे लोग हैं, उनके लिये तो वेद-शास्त्र-पुराण होते हैं। यह तो ऐसा धर्म है कि इसका पालन पढ़े-लिखे और अनपढ़ सब कर सकते हैं। इसलिये वह सबके लिये है। तीसरी बात इसमें यह है कि लोग धर्म कई प्रकार से करते हैं। कुछ लोग यज्ञशाला में

बैठकर यज्ञ करते हैं और कुछ लोग मन्दिर में बैठकर पूजा करते हैं। परन्तु भागवत-धर्म किसी खास तरह का काम करने का नाम नहीं है। आप जहाँ हैं, जो कर रहे हैं, वही भागवत-धर्म हो सकता है।

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्ध्याऽऽत्मना वानुसृतस्वभावात्।
करोति यद् यत् सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पयेत्तत्।।

(भागवत 11.2.36)

इसका अर्थ यह है कि हम शरीर से जो-कुछ करते हैं, वाणी से जो कुछ बोलते हैं, मन से जो-कुछ सोचते हैं, इन्द्रियों से जो-कुछ देखते, सुनते-करते हैं, बुद्धि से जो-कुछ विचार करते हैं अथवा अपनी आदत के अनुसार जो कुछ करते हैं वह सब भगवान् को समर्पित है, यह सब उनका है, उनके लिये है और उनको ही मिले।

मेरा-मेरा कुछ नहीं जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपता क्या लागै है मोर।।

प्रभु, मेरा कुछ नहीं है, सब तुम्हारा है, हम तुम्हारी चीज तुमको समर्पित करते हैं, तुमको देते हैं, उसमें हमारा क्या लगता है?

इसमें बस एक बात ध्यान में रखनी पड़ती है कि हम जो-कुछ कर रहे हैं, भगवान् की प्रेरणा से कर रहे हैं, भगवान् की शक्ति से कर रहे हैं, भगवान् की पसन्द की कर रहे हैं और भगवान् के लिये कर रहे हैं। 'श्रीकृष्णार्पणमस्तु'-करके जितने भी काम किये जाते हैं, वे सब-के-सब भागवत-धर्म हो जाते हैं।

:: 2 ::

अभक्त कोई नहीं

एक बात ध्यान देने योग्य है। हमलोग जो कहीं-न-कहीं फँस जाते हैं, यह ठीक नहीं है। अरे, भगवान् जैसे नचावें, वैसे नाचते चलो। कभी वे नंगा नचायेंगे, कभी कपड़े-लत्ते से सँवारकर नचायेंगे, कभी राजा बनाकर नचायेंगे, कभी माँगने वाला बनाकर नचायेंगे। अपनी ओर से भगवान् के सामने कोई माँग न रखो। जैसे भगवान् रखें, उसमें आनन्द लेते चलो। वे खड़ा तिलक लगा कर मिलते हैं और आड़ा तिलक लगाने से नहीं मिलते हैं-यह बात मन से निकाल दो। वे धनी को मिलते हैं, गरीब को नहीं मिलते हैं, गरीब को मिलते हैं, धनी को नहीं मिलते-यह बात भी मन से निकाल दो और मजे में, मौज से भगवान् का नाम लेते चलो, अपना काम भगवान् के लिये करते चलो। भागवत-धर्म की यही विशेषता है। इसमें खास बात यह है कि इसको करने के लिये यज्ञशाला में नहीं जाना पड़ेगा। आप अपने खेत में, खलिहान में, दूकान में, फैक्ट्री में, कहीं भी भागवत-धर्म का पालन कर सकते हैं। उसके लिये ब्राह्मण होने की भी जरूरत नहीं। चाण्डाल भी, म्लेच्छ भी-भगवान् का नाम ले सकता है।

अयोध्याजी में एक ऊँट था। उसके जो मालिक थे, उनका नाम था बिन्दु जी ब्रह्मचारी। उन्होंने सूत की माला बनायी थी और माला बनाकर ऊँट के गले में पहना दी थी। जब ऊँट बैठता तो भगवान् का नाम लेता था और धीरे-धीरे उसकी गले की माला खिसकती-खिसकती पूरी हो जाती थी। वह ऊँट भी भगवान् का भक्त था। इसी तरह गोरखपुर में जहाँ हमलोग 'कल्याण'-परिवार में रहते थे, हमारे सामने एक कुत्ता रहता था, जो फलाहारी था। वह

एकादशी व्रत करता था। एकादशी के दिन कोई उसके मुँह में रोटी डाल दे तो वह बड़े प्रेम से मुँह में लिये हुए दूर चला जाता और अपने पाँव से धरती खोदकर उसमें रोटी गाड़ देता। उसको पता लग जाता कि आज एकादशी है। वह कभी मांस नहीं खाता था और जब संकीर्तन होता, तब वह कुत्ता आकर स्वर-तालपर नाचता था। यह हमारे सामने की बात है।

तो कुत्ते भी भगवान् के भक्त होते हैं, ऊँट भी भगवान् के भक्त होते हैं। माने भागवत-धर्म में चाहे कोई पशु-पक्षी हो, चाहे कोई औरत हो, चाहे कोई मर्द हो, चाहे कोई गरीब हो, चाहे चाण्डाल हो, चाहे कोई जात हो, चाहे कुजात हो; उसको भगवान् का नाम लेने का, भगवान् की लीला देखने का अधिकार है। लेकिन वह कहीं फँसे नहीं। मूल बात इसमें यही है कि अगर कहीं फँस गये तो फिर रास्ता लम्बा हो जाता है। वह लम्बा रास्ता भी तय तो होता है, लेकिन पहले वह चीज आपको मिलेगी, जिसको चाहकर आप भगवान् की ओर चलते हैं। आप उस चीज को लेते, खाते-पीते, धीरे-धीरे भगवान् की ओर भी पहुँच जायेंगे। लेकिन अगर आपके मन में फँसाव न हो, आसक्ति न हो, मोह न हो और आप भगवान् का नाम लें, भगवान् के गुणानुवाद का श्रवण करें, भगवान् की कथा-वार्ता सुनें और भगवान् को नजर में रखकर काम करें तो आपको भगवान् जल्दी मिलेंगे।

:: 3 ::

भरोसा रहे तो केवल भगवान् का

एक भरोसो एक बल एक आस विश्वास।
एक राम घनश्याम हित चातक तुलसीदास।।

देखो, कई लोग भगवान् का भजन तो करते हैं। लेकिन हम भजन करेंगे तो हमें यह मिलेगा, वह मिलेगा, बेटा मिलेगा, धन मिलेगा, इज्जत मिलेगी-इस प्रकार वे भजन की कीमत लेते हैं और उससे दुनिया खरीदते हैं। इसके बदले में दिया क्या? दिया भगवान् का नाम। भजन बेच दिया और उसके बदले में दुनिया को पा लिया, लेकिन यह बड़े घाटे का सौदा रहा। तुमने भगवान् के नाम, भगवान् के भजन के रूप में बड़ी कीमती चीज दी और उसके बदले में दुनिया की मामूली चीज खरीद ली।

कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो यह सोचते हैं कि हम इतना भजन करेंगे, साढ़े तीन करोड़ भगवान् का नाम लेंगे और इससे हमें भगवान् मिलेंगे। लेकिन ऐसे लोग भी अपने लिये हुये भगवन्नाम की कीमत बना देते हैं और उससे भगवान् को खरीदते हैं। भगवान् की भी कीमत हो जाती है।

कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो कहते हैं कि हमें भगवान् को ही पाना है और भगवान् को मिलाने वाले उपाय के रूप में भी भगवान् ही हैं। उनकी दृष्टि में भगवान् ही मिलते हैं और भगवान् ही मिलाते हैं। इसलिये वे भगवान् के भरोसे अपना समय भजन से भरते रहते हैं। इस प्रकार जो भक्ति से, भजन से, पूजा से भगवान् की सेवा करते हैं, वे ही भगवान् के शरणागत होते हैं। उन्हें धन का सहारा नहीं

है। उन्हें किसी आदमी का सहारा नहीं है और उन्हें बल-पौरुष का सहारा नहीं है। उन्हें तो बस, इस प्रार्थना का सहारा है-

बुद्धिर्विकुण्ठिता नाथ समाप्ता मम युक्तयः।
नान्यत् किंचित् विजानामि त्वमेव शरणं मम।।

वे पुकारते रहते हैं कि 'हे प्रभो! हमारी बुद्धि काम नहीं देती है। हमारी युक्ति, उक्ति, उपाय सब खत्म हो गये हैं। हमें और कुछ मालूम नहीं है, केवल आपका ही भरोसा है'।

असल में जब आदमी को ऐसा अनुभव होता है कि हमारा कुछ नहीं है और हमें किसी का सहारा नहीं है, तब उसे भगवान् का सहारा मिलता है। जब जीव को यह बोध होता है कि दुनिया में हमारा कुछ है ही नहीं, और भगवान् के सिवाय कोई सहारा नहीं है, तब वह जीव अपने 'मैं' को छोड़कर भगवान् के चरणों को पकड़ लेता है, इस प्रकार जब जीव को भगवान् का भरोसा हो जाता है तब भगवान् उसको उठाकर अपने हृदय से लगा लेते हैं। इसलिये सबका भरोसा छोड़कर, सब उपाय छोड़कर और यह ख्याल करके कि अपनी कोई चीज दुनिया में नहीं है, अकेले भगवान् को- एकमात्र भगवान् को-पकड़ लेने का नाम शरणागति होता है। भगवान् स्वयं कहते हैं कि-

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतत् व्रतं मम।।

'जो केवल एक बार आकर मेरा पाँव पकड़ ले और यह याचना करे, यह माँगे कि हे प्रभो, मैं तुम्हारा हूँ, बस, तुम्हारे सिवाय मेरा और कोई नहीं है, तो मैं उसको सबसे निर्भय कर देता हूँ'।

तो ऐसा व्यक्ति चाहे कोई भी हो और चाहे उसे किसी से भी भय हो, भगवान् उसे निर्भय कर देते हैं। जब आदमी सर्वरूप में सर्वात्मना भगवान् की शरण में हो जाता है, तब उसका परम कल्याण

हो जाता है।

:: 4 ::

तुम्हारे पास जो है, उससे सेवा करो

एक बार एक सेठजी आये हमारे पास। बोले कि महाराज, हमारा शरीर कुछ कमजोर है। आप ऐसी कृपा कीजिये, भगवान् ऐसी कृपा करें कि हमारे शरीर में बल आजाये और हम अपने हाथ से आपका पाँव दबायें। अब बताओ, उन्होंने हमारी सेवा को कितना पीछे फेंक दिया! कब तो उनपर भगवान् की कृपा होगी, कब उनका शरीर ठीक होगा और कब वे हमारा पाँव दबायेंगे?

इसी तरह एक गरीब आया हमारे पास! बोला कि महाराज, ऐसी कृपा करो कि मुझपर भगवान् की दया हो जाये और हमारे पास एक करोड़ रुपये आजायें। फिर हम पाँच लाख रुपया लाकर आपके चरणों में अर्पित करेंगे। अब आप सोचो कि गरीब हट्टा-कट्टा होकर भी पाँव दबाता नहीं। उसके पास मजबूत हाथ हैं, उसको चाहिये कि वह उससे सेवा करे। उधर सेठ के पास रुपये हैं, उसको चाहिये कि वह रुपयों से सेवा करे। लेकिन वह चाहता है कि मजबूत हाथ-पाँव मिल जायें और मजबूत हाथ-पाँव वाला गरीब चाहता है कि रुपये मिल जायें। सेवा दोनों नहीं करते हैं।

देखो, जो तुम्हारे वश में नहीं है, उससे तो तुम चाहते हो सेवा करना। रुपया नहीं है तो रुपया लाकर सेवा करना चाहते हो और शरीर में बल है तो बल से सेवा नहीं करना चाहते हो। अरे तुम्हारे पास जो है, उसी को भगवान् में लगाओ। अगर मन्दिर में जाना न बने तो कमरे के बीच में एक मेज रख लो, एक कुर्सी रख लो, उसके ऊपर भगवान् का चित्रपट रख लो और उसके चारों तरफ एक सौ

आठ परिक्रमा घर में कर लो। इससे तुम्हारा शरीर भी ठीक हो जायेगा। बीच-बीच में भगवान् की याद आ जायेगी और धीरे-धीरे ध्यान लग जायेगा। पहले कुछ करो भगवान् के लिये। जो कुछ भी तुम्हारे वश की बात है, वह पहले करना शुरू करो। मन तो तुम्हारे वश में है नहीं, तो मन लगेगा कहाँ? क्या यह कहना हास्यास्पद नहीं है कि महाराज, हमारा बेटा दस बरस से बाहर गया है और लौट कर नहीं आता है। जब लौटकर आ जायेगा, तब मैं उसको लाकर आपके चरणों में गिराऊँगा। अरे भाई, पहले तुम तो गिरो। तुम्हारे पास जो है, उससे काम लो, उसको भगवान् की शरण में करो।

: : 5 : :

गुरु क्यों बनाना

लोग डाक्टरी सीखते हैं बड़े डाक्टर के साथ रहकर और वकालत सीखते हैं बड़े वकील के साथ रहकर। इसलिये यदि ज्ञान और भक्ति सीखनी है तो अपने किसी सच्चे हितैषी का वरण करना चाहिये।

दूसरी बात यह है कि आप अपने को सबसे बड़ा बुद्धिमान् मानते हो तो कितना बड़ा अहंकार है आपके मन में कि हम सब कुछ जानते हैं। ऐसा अभिमान छोड़ने के लिये भी गुरु की जरूरत है, सहायता पाने के लिये भी गुरु की जरूरत है। यदि किसी अनजाने रास्ते पर चलना है और अनमिले दोस्त से मिलना है तो उसमें रास्ता बताने वाला जरूर चाहिये; नहीं तो आदमी भटक जाता है।

तो, हमारा रास्ता बताने के लिये भगवान् स्वयं आते हैं। यह बात भागवत में जगह-जगह आयी है-

आचार्यं मां विजातीयान्नावमन्यते कर्हिचित्।
न मर्त्यबुद्ध्याऽसूयेत सर्वदेवमयो गुरुः।।

(भागवत 11/17/27)

गुरु को भगवान् का स्वरूप ही समझना चाहिये और कभी उसका अपमान नहीं करना चाहिये। शिष्य के लिये गुरु भगवत्रूप ही होता है। यदि आप भगवान् का ध्यान करना चाहते हैं और आपका ध्यान नहीं लगता है तो आप अपने गुरुजी को तो देखते हैं न! उन्हीं का ध्यान कीजिये। देखे हुए का ध्यान जल्दी आता है। आप ध्यान करके उनके हृदय को देखेंगे तो पायेंगे कि वे उसमें ध्यान कर रहे हैं। किसका ध्यान कर रहे हैं? भगवान् का, राम का, कृष्ण का, शिव

का ध्यान कर रहे हैं। आपका ध्यान तो नहीं लगता, लेकिन उनका ध्यान तो लगता है न! इसलिये उनके ध्यान में जो भगवान् हैं, उन्हीं को आप देखिये। उन्हीं का ध्यान कीजिये।

फिर, गुरु अपने हृदय में कर रहे हैं भगवान् का ध्यान और भगवान् अपने हृदय में कर रहे हैं गुरु का ध्यान। भगवान् के हृदय में भी गुरु है और गुरु के हृदय में भी भगवान् हैं। इस प्रकार आप दस सीढ़ी भीतर चलिये। फिर आपको दुनिया भूल जायेगी और भगवान्-ही-भगवान् बने रहेंगे। कई बातें ऐसी हैं, जो गुरु से सीखे बिना कभी आ ही नहीं सकतीं, बतायी नहीं जा सकतीं। ऐसे मन्त्र होते हैं जिनसे एकदम मनुष्य का ध्यान लग जाये। हम और बातें छोड़ देते हैं और केवल यही बताना चाहते हैं कि आप सबलोग यहाँ बैठे हैं-जैसे बैठे हैं वैसे ही बैठे रहें। अपने शरीर के किसी हिस्से पर कोई जोर न डालें। आपके आँख की पुतली न दाहिने जाये, न बायें जाये, न ऊपर जाये, न नीचे जाये। उसको जहाँ का-तहाँ छोड़ दीजिये, आँख की पुतली को हिलाइये मत। एक मिनट तक ऐसा करके देखिये। आपके मनकी चञ्चलता मिट जायेगी, उसका इधर-उधर जाना बन्द हो जायेगा और वह एकाग्र हो जायेगा। यह बात कितनी सुगम है, लेकिन आपको बिना बताये कभी मालूम नहीं पड़ सकती।

आप अपना शरीर तो रोज ही देखते हैं। नहाते होंगे, साबुन लगाते होंगे, तब देखते होंगे, इसमें कितने मोड़ हैं? जितने भी मोड़ हैं, वे सब 'राम' के 'र' के बराबर होते हैं। आप चाहे जहाँ से अपने शरीर को मोड़ो; हाथ मोड़ो, पाँव मोड़ो, उँगली मोड़ो, कमर मोड़ो, कण्ठ मोड़ो। जहाँ भी आप अपने अंग को मोड़ोगे, वहाँ 'र' का आकार बन जायेगा। यह 'राम' का 'र' है। यह बिना बताये ध्यान में नहीं आयेगा। आपके शरीर में तीन जगह ओंकार बना हुआ है-दोनों पाँव और मूत्रेन्द्रिय को लेकर नाभि तक एक, दोनों हाथ और हृदय को लेकर सिर तक दो और दोनों आँखों और नाक को लेकर ऊपर ब्रह्मरन्ध्र तक तीन। तीन जगह 'ओऽम्, ओऽम्, ओऽम्' राम, राम, राम! आप जानना चाहते हो तो

आपके जीवन में, आपके शरीर में ऐसी-ऐसी चीजें हैं, ऐसे-ऐसे रहस्य हैं; जो बड़े-बड़े साइंस-दा लोग लैबोरेटरी में परीक्षा करते रह जायें, प्रयोग करते रह जायें, लेकिन उनका बिलकुल पता नहीं चलेगा।

तो ये सब जो जीवन के, मनके रहस्य हैं, ये गुरु बिना मालूम नहीं पड़ते और गुरु इन सबको सामान्य रूप से बताता भी नहीं है। भगवान् हमसे कहीं दूर नहीं हैं। ऐसा नहीं है कि हम यहाँ बैठे हैं और भगवान् वहाँ हैं। उनके मिलने में भी देर नहीं है कि हम दस बरस भजन करेंगे तब भगवान् मिलेंगे। वे दूसरे भी नहीं हैं, अपनी आत्मा के रूप में ही हैं।

तो यदि ईश्वर के बारे में आपको कुछ जानना हो तो गुरु की शरण ग्रहण कीजिये। संसार में भी जब व्यापार करना होता है तब हम बड़े व्यापारी से सलाह ले-लेकर करते हैं। इसलिये गुरु की जरूरत तो सब जगह है।

अब सेवा की बात तो ऐसी है कि जो गुरुकी बुद्धि है, मति है, नजर है, उससे हमारी बुद्धि, हमारी मति, हमारी नजर मिल जाये; गुरु के दिल से हमारा दिल मिल जाये, वह जहाँ बैठा है, वहीं हम जाकर बैठें। गुरु की सबसे बड़ी सेवा यही होगी कि गुरु जिस भगवान् के पास बैठा है, उसी के पास आप भी बैठें और गुरु अपनी नजर से जिसको देख रहा है, उसको आप भी देखें। जो उसको अनुभव हो रहा है, वही अनुभव आप भी करें। इससे बढ़कर गुरु की और कोई सेवा नहीं हो सकती।

अब रही बात यह कि गुरु का शरीर है तो उसे एक गिलास पानी पिलाना भी सेवा है, उसमें फूल-माला का देना भी सेवा है, उसकी प्रशंसा करना भी सेवा है। उसकी आज्ञा और इच्छा के अनुसार जीवन बनाना भी सेवा है। इस तरह सेवा तो होती रहती है। असल में गुरु की सेवा तो भगवान् करते हैं। वही उनको रोटी देते हैं, वही उनको पानी देते हैं, वही उनको कपड़ा देते हैं, वही उनको साँस देते

हैं, वही उनको जीवन देते हैं। इस प्रकार गुरु की सेवा तो स्वयं भगवान् ही करते हैं, इस संसार के मनुष्य नहीं करते। अब देखना यह चाहिये कि भगवान् कैसे सेवा कर रहे हैं।

: : 6 : :

भगवद्-स्मृति के कुछ उपाय

जहाँ तक स्मृति की बात है, उसके लिये थोड़ा नियम बनाना पड़ता है। यदि आप थोड़े दिनों तक सावधान रहें तो याद आने लग जायेगी। गीताप्रेस में एक बार ऐसा नियम बना था कि एक आदमी भगवान् का चित्र रखे। उसी के लिये वह नौकर रखा हुआ था और उसे तनख्वाह मिलती थी। वह हर पाँच मिनट में चक्कर लगाकर आदमी के सामने भगवान् का चित्र दिखा देता था कि दर्शन करो। आप लिखना शुरू करें तो साथ में एक कागज और रख लीजिये। पहली लाइन आपको लिखना हो तो पहले 'राधे-श्याम' या 'सीताराम' उस कागज पर लिख लीजिये और फिर अपने रजिस्टर में जो लिखना हो सो लिखिये। आप हर खाते में ऐसा कर सकते हैं। इसी तरह घर से निकलना हो तो भगवान् का नाम लेकर निकलिये। रास्ते में मन खाली हो तो भगवान् का नाम लीजिये। पहुँचने पर जब ऑफिस में प्रवेश करना है तो भगवान् का नाम लेकर प्रवेश कीजिये। किसी ग्राहक से बात करनी है या मालिक से बात करनी है तो पहले मन-ही-मन भगवान् का नाम लेकर फिर बात शुरू कीजिये। भोजन करना है तो पहले भगवान् का स्मरण करके भोजन कीजिये।

ऐसा कुछ नियम बनाइये कि अमुक-अमुक काम करते समय हमें भगवान् का स्मरण करना है। एक सज्जन ने नियम बनाया था कि हर घण्टे भगवान् का स्मरण जरूर होना चाहिये। घड़ी सामने होती थी, उसको देख लेते थे। यदि भूल हो जाती तो पछताते और अगले घण्टे के लिये सावधान हो जाते। फिर उन्होंने घण्टे के स्थान पर आधा घण्टे में स्मरण करने का नियम बना लिया। फिर आधे घण्टे को बदलकर हर दस मिनट में स्मरण करने का नियम बना लिया, हर दस मिनट के स्थान पर हर पाँच मिनट में भगवान् का स्मरण करने का नियम बना लिया, हर दस मिनट के स्थान पर हर पाँच मिनट में भगवान् का स्मरण होने लगा। इस प्रकार भाई, यदि

तुम भी करना चाहो तो भगवान् की स्मृति हर जगह, हर समय हो सकती है।

यदि गाय देखो तो भगवान् गाय चराया करते थे-यह स्मरण करो। मोर देखो तो यह सोचो कि मोर भगवान् के साथ नाचा करते थे। पेड़ देखो तो ध्यान करो कि भगवान् पेड़ के ऊपर दोनों पाँव लटकाकर, पीताम्बर फहराकर बैठते थे और बाँसुरी बजाते थे। स्त्री देखो तो यह समझो कि भगवान् तो ऐसी गोपियों के साथ छेड़-छाड़ किया करते थे। कभी दही-दूध- मक्खन देखो तो यह स्मरण करो कि भगवान् तो इनकी चोरी किया करते थे। रोटी देखो तो सोचो कि इसी प्रकार रोटी और माखन मिश्री भगवान् खाया करते थे। ध ूल पर तुम्हारी दृष्टि हो जाय तो यह स्मरण करो कि इसी प्रकार की धूल में भगवान् लोटा करते थे। वराहावतार भगवान् ने ही लिया था, मछली भगवान् ही बने थे। कछुआ भगवान् ही बने थे। पानी में भगवान् तैरते थे और आग को पी गये थे। आकाश उनके समान नीला है। इस प्रकार दुनिया में यदि कोई सावधान रहे तो हर चीज को भगवन्नाम बना सकता है और उससे भगवान् की स्मृति हो सकती है।

भगवान् के स्मरण-चिन्तन की ऐसी महिमा है कि एक दिन गोपी यमुना जल भरने के लिये गयी। जब घड़ा डुबाया उसने पानी में तो ऐसा लगा कि श्रीकृष्ण आ गये हैं और आकर हमारा घड़ा पकड़कर खींचा-खींची कर रहे हैं, पानी भरने नहीं दे रहे। वह बेचारी घड़ा छोड़कर आ गयी किनारे। उसने आ कर लगाया पद्मासन, पीठ की रीढ़ सीधी की, आँख अध -खुली की, सिर सीधा किया, वह बैठकर ध्यान करने लगी।

इतने में देवर्षि नारद वीणा बजाते, हरिगुण गाते वहाँ आ गये। उनको देखकर गोपी उठकर खड़ी हो गयी। नारद बाबा ने पूछा कि क्यों री ग्वालन, तू श्रीकृष्ण का ध्यान कर रही है? गोपी बोली कि

नहीं बाबा, उसका नाम मत लो। नारदजी ने कहा कि अरे बाबा, तुम्हें श्रीकृष्ण के नाम से इतनी चिढ़ क्यों हो गयी? बोली कि क्या करें? सबेरे उठकर घर लीपने लगती हूँ तो ऐसा मालूम पड़ता है कि श्रीकृष्ण आकर हमारे लीपे हुए-को अपने पाँव से रौंद-रौंदकर बिगाड़ते जा रहे हैं, इसलिये घर लीपा ही नहीं गया, बीच में ही रह गया। उसके बाद गाय दुहने गयी तो मालूम पड़ा कि आकर सामने बैठ गये हैं मेरे मुँह में दूध दे दो। अब मैं तो मटके की जगह उनके मुँह में दूध दुहने लगी और देखा तो दूध सब बिखर गया है, वहाँ तो श्रीकृष्ण थे ही नहीं। फिर धान कूटने गयी तो मालूम पड़ा कि श्रीकृष्ण ने आकर मूसल ही पकड़ लिया है और मुझसे धान कूटा ही नहीं गया। इस तरह उनके कारण घर का कोई काम सवेरे से लेकर अब तक नहीं हुआ। जहाँ देखो वहाँ श्रीकृष्ण! पर इसमें श्रीकृष्ण का तो कोई दोष नहीं है बाबा, यह तो मेरे मनका ही दोष है। हमारा मन ही बार-बार श्रीकृष्ण की याद करता रहता है और मान बैठता है कि यहाँ श्रीकृष्ण हैं। इसलिये मैं ध्यान श्रीकृष्ण का नहीं कर रही हूँ, मैं तो योगाभ्यास कर रही हूँ अपने मनको वश में करने के लिये कि यह श्रीकृष्ण को किसी तरह हमारे मन से बाहर निकाल दे। मेरे मनमें श्रीकृष्ण आने ही न पावें। श्रीरूपगोस्वामीजी ने यह कथा लिखी है। वे कहते हैं कि-

प्रत्याहृत्य मुनिः क्षणं विषयतो यस्मिन्मनो धित्सते।
बालेयं विषयेषु धित्सति ततः प्रत्याहरन्ति मनः।
यस्य स्फूर्तिलवाय हन्त हृदये योगी समुत्कण्ठते
मुग्धेयं किल पश्य तस्य हृदयान्निष्क्रान्तिमाकाङ्क्षति।।

(विदग्धमाधव 2/29)

'बड़े-बड़े योगी-यति-संन्यासी चाहते हैं कि एक क्षण के लिये हमारे हृदय में श्रीकृष्ण का पीताम्बर फहरा जाये, उनके दशों नख चमक जायें, उनकी आँख की रोशनी फैल जाये और उससे हमारे हृदय का अंधकार दूर हो जाये। लेकिन उन्हीं श्रीकृष्ण को अपने हृदय से निकालने के लिये गोपी योगाभ्यास कर रही है'।

इसलिये जहाँ विश्वास होता है, वहाँ प्रेम होता है; जहाँ प्रेम होता है, वहाँ सेवा होती है और जहाँ सेवा होती है, वहाँ स्मृति होती है। एक-दूसरे से मिली-जुली रहती हैं।

: : 7 : :

'दान' : विभिन्न प्रकार

दान कई तरह के होते हैं। कोई दान निष्फल चला जाता है, कोई दान थोड़ा फल देता है, कोई दान बराबर फल देता है, कोई दान ज्यादा फल देता है, कोई दान परलोक देता है, कोई दान अक्षय फल देता है और किसी दान से भगवान् प्रसन्न होते हैं। इस प्रकार दान के बड़े-बड़े भेद होते हैं। कोई कहते हैं कि विद्यादान सबसे बड़ा दान है, कोई कहते हैं कि अन्नदान सबसे बड़ा दान है, कोई कहते हैं वस्त्र दान सबसे बड़ा दान है। लेकिन तुम कुछ निकालो तो भाई! बड़ा-बड़ा दान ढूँढ़ने में जिन्दगी बीत जायेगी और दान के लिये तुम्हारे पास न शुकदेव आयेंगे, न वामदेव आयेंगे और न वशिष्ठ आयेंगे। जैसे तुम्हारी कमायी हुई है, उसी ढंग से लोग भी लेने के लिये आयेंगे। इसलिये अगर सौ पैसे लेकर तुमने पाँच पैसे किसी को दिये तो तुम्हारी ममता पहले सौ पैसे की थी, अब वह पंचानवे पैसे की हो गयी। ममता का घेरा जितना कम होता गया, सब ईश्वर का होता गया और दान उतना ही बढ़िया होता गया। इसलिये कभी कोई बता देगा कि अन्नदान बढ़िया है, कभी बता देगा कि वस्त्र-दान बढ़िया है, कभी बता देगा कि औषधि-दान बढ़िया है, कभी बता देगा कि गृह-दान बढ़िया है और कभी बता देगा कि स्वर्णदान बढ़िया है। लेकिन मेरे भाई, कीमत वस्तु की नहीं है; तुम्हारे दिल की कीमत है। जब सद्भाव से, प्रेम से भरपूर होकर किसी को एक गिलास पानी पिलाओगे, उसको एक मुट्ठी अन्न दोगे, यह भी सम्भव न हो सके तो दो मीठी बात बोल दोगे, उसके ऊपर एक प्यार भरी नजर डाल दोगे तो यह तुम्हारा सबसे बड़ा दान हो जायेगा। अपने हृदय का सद्भाव ही सबसे बड़ा दान है। महात्मा लोग वस्तु को कीमती नहीं मानते हैं,

हृदय के सद्भाव को ही कीमती मानते हैं। इसलिये किसी चीज पर मत जाओ, अपने दिल से देखो। अगर दिल साफ है, श्रद्धा से भरपूर है तो जो-कुछ भी दे रहे हो-यहाँ तक कि एक तृण भी बहुत है।

असली दान होता है भगवान् की प्रसन्नता के लिये। भगवान् की चीज भगवान् को दे देने का नाम असली दान है। आपके पास रुपया हो तो रुपया दो, अन्न हो तो अन्न दो और कपड़ा हो तो कपड़ा दो। यह तुम पहले ही सोच लेते हो कि जिसको हम देंगे, वह उसका दुरुपयोग करेगा-जैसे हम उसको अन्न देंगे तो वह बेच देगा, कपड़ा देंगे तो वह बेच देगा और पैसा देंगे तो गाँजा-शराब पी लेगा, आदि-आदि। लेकिन यह ठीक नहीं है। यदि तुम पहले ही दुर्भावना बना लोगे अपने मन में कि यह हमारा दान बुरे काम में लगा देगा तो उससे तुम्हारा हृदय दूषित हो जायेगा। फिर जिसको देना है, उसके प्रति सद्भाव ही नहीं रहा, विश्वास ही नहीं रहा तो देने का अर्थ ही क्या हुआ? तब तुम्हारे पास किसी को देने के लिये रहेगा क्या?

इस का तात्पर्य यही है कि किसी के प्रति भी उपेक्षा या अनादर होने पर तुम्हारे हृदय में जो भगवान् हैं, वे दुर्भाव के आश्रय हो जायेंगे। दुर्भाव उनको ढकता जायेगा। फिर तुमको भगवान् का दर्शन कभी नहीं होगा। इसलिये दिल को ठीक रखना चाहिये और अपने हृदय में जो सद्भाव है, वह सबको देते जाना चाहिये।

:: ४ ::

प्रवृत्तिनियामको वर्णधर्मः निवृत्तिपोषकश्चापरः

जो हमारी स्वच्छन्द-प्रवृत्ति को रोके, उसको वर्ण-धर्म कहते हैं। आज तो सबसे बड़ी चीज यह है कि 'हमारे मनके अनुसार सब बातें होनी चाहिये।' लोग कहते हैं कि 'इसने किया, सो तो ठीक किया; लेकिन, हमारे मनके अनुसार क्यों नहीं किया?

लगभग दो-हजार वर्ष पुराने एक ग्रन्थ में 'श्वश्रु सुभगा न्याय' का उल्लेख मिलता है। एक संन्यासी किसी के घर में रोटी माँगने गया। द्वार पर पहुँचकर उसने पुकारा-'नारायण हरिः।' भीतर से बहूजी निकलीं। वह हाथ जोड़कर बोलीं-'महाराज! अभी घर में रोटी तैयार नहीं है।' बाबाजी वहाँ से चल पड़े। जब एक-दो मील आगे बढ़ गये, तब सासजी मिल गयीं। उन्होंने पूछा-'महाराज! आप हमारे घर रोटी लेने नहीं गये?' बाबा ने कहा-'तुम्हारे घर में गया तो था' सासजी ने पूछा-'तब क्या हुआ महाराज?' बाबाजी बोले-'बहू ने हाथ जोड़-कर बताया कि अभी घर में रोटी तैयार नहीं है।' सासजी बोलीं-'महाराज! उसको क्या हक था कि वह आपसे यह कहे कि अभी घर में रोटी तैयार नहीं है। चलो महाराज! आप फिर चलो।' अब सासजी ने पकड़ा हाथ बाबाजी का और फिर से एक-दो मील तक बाबाजी को घेरकर ले आयी। घर में पहुँचकर बहू को बुलाकर डाँटा- फटकारा-'बहू! तुमको क्या हक था कि तुमने महाराज को कह दिया कि अभी घर में रोटी तैयार नहीं है? जब डाँट-डपट लिया, तब सासजी घर में गयीं। अब बाबाजी खड़े-खड़े देख रहे थे कि यह रोटी लाकर देगी। लेकिन, हुआ यह कि सासजी भी घर के भीतर घूम-फिरकर वापिस बाहर आयीं और बोलीं-'महाराज! अभी घर में रोटी तैयार नहीं है।' बाबाजी वहाँ से चल पड़े। अब लो! यह

क्या बात हुई? भला बताओ दोनों बात में क्या अन्तर है? क्या सासजी और बहूजी ने एक-ही बात नहीं कही? परन्तु सासजी का कहना है कि बहू को यह बात कहने का हक नहीं है। हम देखते हैं कि आज लोगों की लड़ाई इस बात के लिये होती है कि 'इसने भले ही ठीक-ठीक काम किया है; लेकिन, हमारे मनके अनुसार क्यों नहीं किया है?' है कि नहीं? आज सारी-की-सारी लड़ाई तो यही है कि लोग अपने- अपने मनको ही ले-लेकर के बैठे हुए हैं कि 'बस! हमारे ही मनके अनुसार क्यों नहीं हुआ?'

अपने मनकी प्रधानता को मिटाकर समष्टि मनकी प्रधानता की स्थापना ब्रह्मचर्याश्रम में होती है। पहले लोग माँ-बाप से अलग रहकर ब्रह्मचर्याश्रम में रहते थे। वहाँ प्रतिदिन प्रातःकाल-मध्याह्न-सायंकाल स्नान करते थे। सन्ध्या-वन्दन करते थे। अग्निहोत्र करते थे। स्वाध्याय करते थे। भिक्षा करके लाते थे। उनको चार गाली सुननी पड़ती थीं। सब काम करना पड़ता था। वहाँ ब्रह्मचर्याश्रम में रहने से उनके गृहस्थाश्रम की जो नींव पड़ती थी, उसमें निवृत्ति आती थी। वह **'निवृत्तिपोषकश्चापरः।'** आज लोग चाहे जितना धन इकट्ठा कर लें और चाहे जितना भोग भोगें; लेकिन, आज लोगों में अपने मनको रोकने का माद्दा ही बिलकुल नहीं है। बल्कि, आज लोग यहाँ तक भी कहते हैं कि 'Nature' (प्रकृति) की माँग है। यह सब तो 'Natural' (नैसर्गिक) है। आज लोग चाहते हैं कि जो सुन्दर स्त्री है, वह हमको मिले। जो सुन्दर पुरुष है, वह हमको मिले। जो सुन्दर भोजन है, वह हमको मिले। जो सुन्दर मकान-दुकान है, वह हमको मिले। जो सुन्दर वस्त्र-प्रसाधन है, वह भी हमको ही मिले। संसार की जितनी सुन्दरता है, उसका भोग हमको मिले। बाकी लोगों को कुछ भी नहीं मिलना चाहिये। मैं ही संसार की समस्त सुन्दरता का भोग भोगने वाला हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु हूँ। **'हिरण्याक्षायते।'** आज एक-एक आदमी हिरण्याक्ष और

हिरण्यकशिपु का रूप हो रहा है। असल में, आज सारी-की-सारी दुर्दशा का मूल कारण है-वर्णाश्रम-धर्म-व्यवस्था का टूट जाना।

जब आदमी का ब्रह्मचर्याश्रम ठीक होगा, तब उसका गृहस्थाश्रम भी ठीक रहेगा। वह अपनी पत्नी के साथ संयमपूर्वक रहेगा। यह नहीं कि जब मौज आयी, तब ही संग कर लिया। वह ऋतुगामी होकर के रहेगा। वह धन कमायेगा, लेकिन ईमानदारी से। वह धन रखेगा और भोगेगा, लेकिन एक हिसाब से। वह धर्म के अनुसार अपना धन बाँटेगा। उसका धनोपार्जन-संग्रह- वितरण धर्मानुसार होगा। देखो! केवल कमाने-रखने की ही प्रक्रिया नहीं होती है। वितरण की भी प्रक्रिया होती है। जैसे पानी को घर के भीतर लाने के लिये नल होता है; भरकर रखने के लिये टँकी होती है; और बाहर निकालने के लिये नाली होती है; ठीक वैसे ही, धन को कमाकर घर के भीतर लाने के लिये एक उपाय होता है; रखकर भोगने के लिये एक व्यवस्था होती है और बाँटकर बाहर निकालने के लिये भी एक मार्ग होता है। जैसे घर में पानी आता है, तो उसको बाहर निकालने का रास्ता भी होता है, वैसे ही जब घर में धन आता है, तब उसके बाहर निकलने का रास्ता भी होना चाहिये। यदि सारी जिन्दगी केवल धन-सम्पदा को इकट्ठा-ही-इकट्ठा करोगे, तो उस धन के लिये राजा से, चोर से और शत्रु से भय आवेगा। **'राजतः चौरतः शत्रौः'** जब भय आयेगा, तब चिल्ला-चिल्लाकर कहोगे कि हमारे साथ बड़ा अन्याय हो रहा है। हमारे साथ बड़ी बेईमानी हो रही है। अरे बाबा! तुम कौन-से दूध के ध ुले हो? तुमने भी तो अन्यायपूर्वक धन कमाया और बेईमानी से इकट्ठा किया है। तुमने चोरी का छाता लाकर घर में रखा। जब दूसरा चोरी करके ले गया, तब तुम Police Report (कोतवाली में शिकायत दर्ज) कराने गये। भाई मेरे! जब तुमने चोरी की थी, तब Police Report क्यों नहीं की?

आज दुनियाँ में वर्णाश्रम-धर्म-व्यवस्था के प्रति जो उपेक्षा का भाव आया है, उसके कारण बड़ा भारी अनर्थ आया है। यदि प्रत्येक

व्यक्ति के मनमें यह कल्पना रहती कि आगे चलकर हमको वानप्रस्थ-जीवन व्यतीत करना है, तो वह अपना गृहस्थ जीवन सुव्यवस्थित रखता। यदि प्रत्येक व्यक्ति के मन में यह कल्पना रहती कि बड़ी अवस्था होने पर हमको स्वावलम्बी जीवन व्यतीत करना है, तो वह इस समय परावलम्बी जीवन व्यतीत नहीं करता। जिस गृहस्थ के मनमें यह कल्पना बनी रहेगी कि घर में बहू-बेटे के आने पर हम घर से निकल करके तपस्या का जीवन व्यतीत करेंगे, वह कभी भी अपने घर-परिवार में मोहासक्त नहीं होगा। जब गृहस्थाश्रम में धर्म का ठीक-ठीक अभ्यास किया होगा, तब वानप्रस्थाश्रम में भी त्याग-तपस्या का ठीक-ठीक अभ्यास हो सकेगा। यदि गृहस्थाश्रम में अर्थासक्ति और भोगासक्ति बढ़ती जायेगी, तो स्वयं का गृहस्थ जीवन भी बोझिल-भारस्वरूप हो जायेगा। जब घर में बहू-बेटे आ जायेंगे और चार बातें सुनाकर, तिरस्कार करके, घर में से निकाल देंगे, तब कहेंगे कि 'अरे! हमारे बहू-बेटे तो हमारी बात मानते ही नहीं हैं। स्वयं जो हैं उनका अर्थ-भोग पराधीन का जीवन है। अब भला बताओ! स्वयं में तपस्या का जीवन कैसे व्यतीत होगा? अब बहू-बेटे घर में आ गये, तो स्वयं को घर से निकल करके तपस्या का जीवन व्यतीत करना चाहिये। यह तो तब होगा, जब गृहस्थाश्रम में धर्म का अभ्यास बिलकुल ठीक-ठीक किया होता। जिसके मनमें यह कल्पना होती है कि हमको एक-न-एक दिन सबका त्याग करना है, वह संसार में कभी भी आसक्त नहीं होता है। जो यह सोचेगा कि जो हम कमा रहे हैं, जो हम भोग रहे हैं, वह सब हमको एक दिन छोड़ देना है, उसका गृहस्थाश्रम का जीवन बहुत पवित्र हो जायेगा। जिसके मनमें यह छोड़ने की कल्पना बनी रहेगी, वह अपने जीवन को कभी बिगाड़ेगा नहीं। वह अपने जीवन को कभी पराधीन नहीं करेगा। दूसरे लोगों के लिये छोड़ते जाना-छोड़ते जाना-छोड़ते जाना, यह जीवन का कितना सर्वोच्च विकास है। दूसरे लोग भी अत्यन्त सुखपूर्वक अपना सहज-जीवन व्यतीत करें, ऐसा सोचना, बोलना-करना मानव-जीवन का कितना-सर्वोत्तम उत्कर्ष है।

: : 9 : :

जिज्ञासा और समाधान

अब यह जो आपका प्रश्न है कि क्या भक्ति प्रयत्न से मिल सकती है तो इस प्रश्न के सन्दर्भ में मैं आपसे पूछता हूँ कि क्या आपके हृदय में भक्ति नहीं है? पिता के प्रति भक्ति नहीं है? आचार्य के प्रति भक्ति नहीं है? नेता के प्रति भक्ति नहीं है? अरे बाबा, क्या अपने शरीर के प्रति भी भक्ति नहीं है? हाँ, कहीं-न-कहीं भक्ति है। सबके अन्तःकरण में जो अपना आनन्द- स्वरूप है, उसका प्रतिबिम्बन होता है, उसकी छाया पड़ती है और उस छाया के कारण अपना अन्तःकरण रसीला हो जाता है। आप उस रस को कहाँ से लेना चाहते हैं या कहाँ देना चाहते हैं? यदि संसार में देना या लेना चाहते हैं तो उसे जरूर आपको कभी-न-कभी छोड़ना पड़ेगा, चाहे वह छूटे अथवा चाहे आप उसे छोड़ें। ऐसी स्थिति में यदि इस रसानुभूति का आधार आपके हृदय में ही हो, आपके हृदय में रहने वाला आत्मदेव ही हो, अन्तर्यामी परमेश्वर ही हो, आपके द्वारा ध्यान में आया हुआ भगवान् का नाम-रूप-लीला -धाम ही हो तो आप सर्वथा निर्भय होकर उसका आश्रय पकड़ लीजिये। तब आप अपनी प्रीति को कहीं दूसरी ओर जाने से, कहीं आसक्ति होने से, कहीं ठगे जाने से, कहीं फँसने से बच सकते हैं। यदि आप अपने हृदयस्थ परमेश्वर के ही स्वरूप, स्वभाव, प्रभाव, अनुभाव, उनके गुण, उनकी रूप लीला, उनकी सेवा और उनके नाम-जप आदि के द्वारा अपने हृदय में भगवान् की भक्ति बढ़ाना चाहें तो भक्ति को पूर्ण कर सकते हैं, जो कि आपके हृदय में पहले से ही है। भक्ति बाहर से आती नहीं है। भक्ति तो है, परन्तु जैसी भक्ति गोस्वामीजी चाहते हैं वैसी वह नहीं है। वे कहते हैं :-

कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम।।

जैसे कामी की प्रीति नारी के साथ जुड़ गयी, लोभी की प्रीति ध ान के साथ जुड़ गयी; वैसे ही हमारी प्रीति भगवान् के साथ जुड़ जाये। विष्णुपुराण में आया है :-

या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी

(1.20.19)

इसका मतलब यही है कि संसारी लोगों की नश्वर वस्तुओं में, छूटने वाली, मिटने वाली, टूटने वाली वस्तुओं में-जितनी प्रीति होती है, उतनी प्रीति यदि हृदय में भगवान् के साथ हो जाये तो मंगल हो जाये। अरे, तुम तो भगवान् को जब चाहो तब देख लो। वे तुम्हारे हृदय में ही तो हैं। जो आँख सपना देख लेती है, जो कान सपने की आवाज सुन लेते हैं, जो जीभ रसीला पदार्थ सपने में खा लेती है, जो नाक सूँघ लेती है, जो त्वचा यहाँ के सुकुमार स्पर्श का अनुभव कर लेती है, जो मन यहाँ प्रिय-अप्रिय का चिन्तन कर लेता है, वही आपका मन, वही आपका अन्तःकरण यदि जागते हुए भगवान् का सपना देखने लगे तो आपके हृदय में जरूर-जरूर प्रीति, भक्ति का उदय होगा। किन्तु यदि आप ऐसा सोचते हैं कि हमें तो भक्ति की कोई जरूरत नहीं, त्वरा नहीं है, उतावली नहीं है-जब भगवान् को गरज होगी तब वे आकर हमारे हृदय में भक्ति दे देंगे तो आप प्रतीक्षा कीजिये-एक युग, दो युग, एक कल्प, दो कल्प। किन्तु यदि आप अपनी प्रीति को ठीक दिशा देते हैं भगवान् की ओर, अन्तर्जगत् की ओर तो सारे दुःख जो संसार के हैं, वे मिट जायेंगे और आप सुखी हो जायेंगे। इस जीवन को सुखी करने वाली रसानुभूति से सराबोर करने वाली, परमानन्द का अनुभव कराने वाली यदि कोई वस्तु है तो भगवान् की भक्ति ही है।

:: 10 ::

भगवद्-कृपा की पहचान

मनुष्य भगवान् की कृपा के स्वरूप को अपनी वासना के अनुसार बनाना चाहता है। वह चाहता है कि यदि भगवान् हमारे शरीर में रोग नहीं देंगे तो उनकी बड़ी कृपा होगी, यदि भगवान् हमको खूब धन देंगे तो उनकी बड़ी कृपा होगी और यदि भगवान् हमें ऊँची गद्दी पर बिठा देंगे तो उनकी बड़ी कृपा हागी। कृपा के बारे में मनुष्य ने अपने को भगवान् पर नहीं छोड़ा। वह चाहता है कि जैसा हमारा मन है, उसी को पूरा करने वाली कृपा हमारे ऊपर होती रहे।

लेकिन यह भगवान् की कृपा की पहचान नहीं है। कृपा तो कभी कड़वी दवा देने में होती है और कभी मीठी दवा देने में। कभी भूखा रखने में कृपा होती है और कभी खूब खिलाने में कृपा होती है। कभी ताड़ना में कृपा होती है और कभी लाड़ में कृपा होती है। इसलिये हम जो कृपा के स्वरूप को अपनी वासना के अनुसार गढ़ना चाहते हैं, यह हमारी बड़ी भूल है।

होना यह चाहिये कि भगवान् हमें जैसा रखें, उसी में हम उनकी कृपा को पहचानें। क्योंकि भगवान् कभी ठंडा करके कृपा करते हैं तो कभी गर्म करके कृपा करते हैं। जैसे भोजन के लिये रोटी बनाते समय कभी तवेपर मट्ठा छिड़ककर पकाया जाता है तो कभी गर्म-गर्म सेंक दिया जाता है और उलटते-पलटते रहने पर ही रोटी पकती है, वैसे ही भगवान् की कृपा काम करती है। लेकिन हम इस बात को पहचान नहीं पाते हैं। इसलिये ऐसा लगता है कि उनकी कृपा की वर्षा नहीं हो रही है। यदि हम उनकी कृपा को पहचान लें तो देखेंगे कि वह सर्वत्र, सब पर और सब अवस्थाओं में बरस रही है। लेकिन यह पहचान तभी होगी जब हम अपनी वासना छोड़कर प्रभु हमारे जीवन को जैसे सन्मार्ग पर ले चलना चाहते हैं, वैसे चलते रहें। आप वृन्दावन के पुराने अकबर-कालीन महात्मा हरिदासजी के इस वचन

को याद कर लीजिये :

ज्यों-ही ज्यों-ही रखियत हौं,

त्यों-ही त्यों-ही रहियत हौं हे हरि।

जिनको भगवान् की कृपा की पहचान हो जाती है, वे हर हालत में सुखी रहते हैं। उनको कभी यह नहीं लगता कि जब भगवान् कृपालु हैं तब ऐसा क्यों कर रहे हैं, वैसा क्यों कर रहे हैं। उन्हें तो हर हालत में कृपा-ही-कृपा दिखती है। इसलिये भगवान् की कृपा को पहचानने का प्रयास कीजिये। उनकी कृपा का दर्शन करके ही गोस्वामी तुलसीदास जी ने यह कहा कि **'प्रभु-मूरति कृपामयी है।'**

जब आप प्रभु को पहचान जायेंगे, उनकी कृपा को पहचान जायेंगे तो देखेंगे कि कृपा की गंगा बह रही है, कृपा का समुद्र उमड़ रहा है। कृपा की शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु चल रही है। कृपा का संगीत हो रहा है। सम्पूर्ण जीवन ही कृपामय हो गया है, वैकुण्ठमय हो गया है।

किन्तु जब तक आप भगवान् की कृपा को नहीं पहचानते हैं, तब तक तो जिस प्रकार किसी बालक को अपनी माँ भी अत्यन्त क्रूर मालूम पड़ती है, उसी प्रकार आपको भगवान् की कृपा भी अत्यन्त क्रूर मालूम पड़ सकती है। इसलिये आपको कृपा को पहचानने का प्रयास करना चाहिये कि मरने में क्या कृपा है, रोग में क्या कृपा है, दरिद्रता में क्या कृपा है और यहाँ ताड़ना में क्या कृपा है। यह पहचान यदि हो जाये तो फिर सारी सृष्टि कृपामयी हो जाती है।

: : 11 : :

भगवद्-अवतरण की भूमि

एक बार श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज से किसी ने ऐसा ही प्रश्न पूछा था कि अधर्म में किसी प्रकार की कमी रही नहीं, वह दुनिया में बढ़ता जा रहा है, फिर भगवान् का अवतार कब होगा?

आप लोग बुरा न मानें तो मैं अपने मनकी बात कह देता हूँ। अध ार्म तो धर्म का भाई है। यह बात केवल मैं नहीं कह रहा, शास्त्रों के अनुसार भी अधर्म का छोटा भाई है धर्म, पहले मनमें अधर्म आता है तो उसको नियन्त्रित करने के लिये धर्म की आवश्यकता होती है। आपने देवासुर-संग्राम का वर्णन सुना होगा। यह देवासुर-संग्राम हमारे भीतर भी चलता रहता है। जब मनोवृत्तियों में परस्पर टकराव

होता है, संघर्ष होता है, हम सन्ध्या-वन्दन करें कि सिनेमा देखने जायें कि क्लब में जायें कि सो जायें- यह देवासुर- संग्राम ही तो है।

असल में पहले अधर्म कम था और अब बढ़ गया- ऐसा तो नहीं लगता। हमारे बाप-दादा-परदादा अपने बचपन की बात सुनाकर कहा करते थे कि पहले अधर्म बहुत कम था और अब बढ़ रहा है, हम भी कहते हैं कि हमारे बचपन में बहुत अच्छा था, अब बिगड़ता जा रहा है। शायद मनुष्य के अनुभव की एक प्रक्रिया ही ऐसी है कि वह बीती बातों को बहुत अच्छी और वर्तमान को बहुत बुरी समझने लगता है। लेकिन इसमें सावधान रहने की जरूरत है। हर बात को अधर्म कहकर कोसना, बुरा बताना, यह उचित नहीं है। जरा देश को भी देखना चाहिये, परिस्थिति को भी देखना चाहिये। इसी तरह काल को, वय को, शक्ति को, शिक्षा को सबको देखकर अधर्म का फतवा देना चाहिये।

तो, जब उड़ियाबाबाजी महाराज से किसी ने पूछा कि अधर्म बहुत बढ़ गया है, भगवान् का अवतार क्यों नहीं होता? तब बाबा तुरन्त बोले कि भाई, अधर्म सचमुच बहुत बढ़ गया है- कंस एक नहीं अनेक हो गये हैं। लेकिन देवकी-वसुदेव नहीं है। यदि कोई देवकी-वसुदेव हो जाय तो भगवान् का अवतार अब भी हो सकता है।

इसलिये भाई मेरे, जब हम भगवान् के बारे में बात करते हैं तब उसके साथ अपने मनका संभव-असंभव नहीं जोड़ना चाहिये। हम जिसको असंभव समझते हैं, उसको भी ईश्वर संभव कर सकता है और जिसको संभव समझते हैं, उसको भी असंभव कर सकता है। इसलिये ईश्वर के बारे में क्या संभावना है, क्या असंभावना है- इसका विचार नहीं करना चाहिये। हाँ, जब हमको अधर्म से दुःख होता है, तब हमें प्रार्थना करनी चाहिये कि हे प्रभु! लोक में, जन-जन

में, मन-मनमें अधर्म की वृद्धि हो रही है, अधर्म का अभ्युत्थान हो रहा है। उस अभ्युत्थान को शान्त करने के लिये आप स्वयं अवतार लीजिये या किसी सत्पुरुष को भेजिये या अपने संकल्प से मिटाइये। यह प्रतिज्ञा आपकी ही है-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

(गीता 4.7)

प्रार्थना करने का अधिकार तो सबको है ही, कोई भी प्रार्थना कर सकता है।

रही बात भगवान् के अवतार की, सम्भावना की, वह हमारे हृदय में हमेशा ही रहती है। हम कहते हैं कि हे भगवान् अभी प्रकट हो जाओ। यह भी कहते हैं कि भगवान् अभी प्रकट होने वाला है। इसलिये जितनी बढ़िया और जितनी उत्कृष्ट प्रबल सम्भावना आपके मनमें बनेगी उतना ही आपका चित्त पवित्र हो जायेगा और चित्त की पवित्रता ही भगवान् के अवतार की भूमि है।

:: 12 ::

स्वयं को सत्यानुभवी बनाइये

एक बार गीतावाटिका, गोरखपुर में हम कई लोग बैठे थे-मैं था, पण्डित लक्ष्मणनारायण गर्दे थे, भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र 'माधव' थे, देवधरजी शर्मा थे, गिरधारी बाबा थे तथा और भी कई लोग थे। एक ने कहा कि आजकल तो सब लोग बेईमान हो गये हैं। इस पर गर्देजी ने कहा कि- देखो भाई, तुम्हारा अपने बारे में जो अनुभव है, वह तो ठीक हो सकता है। लेकिन दूसरों के बारे में तो तुम्हारी कल्पना ही है।

तो तुम्हें जो सत्यवादी नहीं मिलते इसके लिये थोड़ा अपने अन्तःकरण को देखने की जरूरत है कि वह असत्य ही असत्य क्यों देखता है? क्या सचमुच विश्व में सत्य नहीं है? 'नहीं' भी तो एक सत्य है। जिसको हम 'नहीं' कहते हैं, वह भी एक सत्य ही है और नहीं के बाद जो 'है' बोलते हैं, वह नहीं को सत्य बनाने के लिये है और उसी के साथ जुड़ा हुआ है।

एक बात देखो! क्या आपको सत्य का यथार्थ ज्ञान है? आप जानते हैं कि ऐसा कौन-सा सत्य है, जो वस्तुओं और व्यक्तियों से प्रभावित नहीं होता? असल में आप अपने मनसे छोटा-सा सत्य बना लेते हैं और उस सत्य के साथ इतने चिपक जाते हैं कि आप दूसरों को असत्य ही समझने लगते हैं। आज रामभक्त, कृष्णभक्त को असत्य समझता है तो कृष्णभक्त, रामभक्त को असत्य समझता है। इसी तरह शिवभक्त विष्णुभक्त को, विष्णुभक्त शिवभक्त को, निराकारी साकारी को, साकारी निराकारी को, आत्मवादी अनात्मवादी को और अनात्मवादी आत्मवादी को असत्य समझने लगता है!

इसलिये यह जो छोटी-सी बुद्धि, छोटी-सी धारणा, छोटे-छोटे विचारों को लेकर हम दूसरों को छोटा-बड़ा बताते हैं, वह कोई बहुत बुद्धिमत्ता की बात नहीं है। हम और अधिक विस्तार न करके यही कहना चाहते हैं कि आप स्वयं अपने को सत्यवादी बनाइये। सत्यकर्मा बनाइये, सत्य संकल्प बनाइये। सत्य-भाव, सत्य-विचार, सत्यानुभवी आप अपने को बनाइये। जब आप स्वयं सत्यानुभवी बन जायेंगे तो आप देखेंगे कि व्यवहार तो परम सत्य का ही एक प्रकाश है। इसमें अपने हृदय को दूषित करने का कोई कारण नहीं है। यह मानना कि दूसरे सब असत्यवादी हैं और हम चलकर उनका सुधार करेंगे, सबको सत्यवादी बनायेंगे तो ऐसा भगवान् ने भी नहीं बनाया है। फिर आपके बनाये तो कभी सब सत्यवादी हो ही कैसे सकते हैं? इसलिये पहले आप स्वयं सत्यवादी बनकर देखिये!

: : 13 : :

जहाँ भक्ति, वहाँ दुःख कहाँ?

वाह भाई! जिसके हृदय में भगवत्-भक्ति है उसके हृदय में दुःख प्रवेश ही नहीं कर सकता। जहाँ भगवान् बैठे हैं, वहाँ भगवान् का प्रेम बैठा है, वहाँ दुःख का क्या काम! भक्ति की जो पहचान है, उसमें एक यह भी है कि वह प्रारब्धहृत होती है। इसका अर्थ है पापों के फलस्वरूप हृदय में जो भी ताप आता है, उसको सोख लेती है। यह हो सकता है कि भक्त के जीवन में बाहरी रूप से कोई कष्ट, कोई संकट मालूम पड़ता हो। लेकिन इसमें भी हमारा भ्रम हो सकता है। लोग यही समझते हैं कि जिसके पास मकान अच्छा हो, वह सुखी है। जिसके पास चार चापलूस दिन भर खुशामद करते रहते हैं, वह सुखी है। जिसकी पत्नी बढ़िया है, वह सुखी है और जिसके पास धन बहुत है, वह सुखी है। परन्तु यह हम सब लोगों की उल्टी कल्पनाएँ हैं और इनकी कसौटी पर जब हम भक्तों को कसते हैं तब हमें लगता है कि वे दुःखी हैं।

असल में भक्त के हृदय की स्थिति होती है, उसकी दृष्टि से आप देखें तो वह ऐसी निर्मलोज्ज्वल होती है कि कृष्ण को गोलोक में नहीं रहने देती, राम को साकेत में नहीं रहने देती और ईश्वर को निराकार-निर्गुण नहीं रहने देती। भक्त के हृदय की ऐसी स्थिति होती है कि वह परमात्मा को खींचकर अपने हृदय में ला देती है।

आपके मनमें यह कल्पना होगी कि ये-ये चीजें जीवन में हों तब मनुष्य सुखी होता है। असल में यह कल्पना ही बहुत दुःखदायी है और इस कल्पना को पूरी करने में ही मनुष्य को दुःख का अनुभव होता है! इसलिये आप एक बार सब-कुछ भगवान् पर छोड़कर वृन्दावन के सन्त स्वामी हरिदास जी के शब्दों में बोलकर देखिये तो-

ज्यों-ही ज्यों-ही रखियत हौं
त्यों-ही त्यों-ही रहियत हौं हे हरि!

यह भाव आ जाने पर दुःख तो आपको कभी छू ही नहीं सकता है। आपकी जीभ से किसी की निन्दा-स्तुति नहीं निकल रही है। केवल कृष्ण -कृष्ण-कृष्ण का और राम-राम-राम का उच्चारण हो रहा है। आपके मनमें किसी चोर, किसी डाकू, किसी व्यभिचारी की याद नहीं आ रही है। आपके हृदय में परमेश्वर की स्मृति झिलमिल-झिलमिल, जगमग-जगमग रसकी धारा प्रवाहित कर रही है। आपके विचार का लक्ष्य परमात्मा का स्वरूप है। आप बैठते हैं परमात्मा में, सोते हैं परमात्मा में, जागते हैं परमात्मा में! फिर आपको दुःख कैसे हो सकता है।

: : 14 : :

'अभिमान' आरोपित है, वस्तुतः नहीं

देह का अभिमान तो किसी को होता ही नहीं है। हड्डी का, मांस का, चमड़ा का, विष्ठा का, मूत्र का जो यह थैला है, वह मैं हूँ- ऐसा अभिमान किसी को नहीं होता है। वह तो किसी के कहने पर कि तुम चिकने-चुपड़े ब्राह्मण हो, ब्राह्मणत्व कल्पित होता है और उसका अभिमान आ जाता है! किसी के यह कहने पर कि तुम बड़े विद्वान् हो, देह में विद्वत्ता की, वैदुष्य की कल्पना हो जाती है और उसका अभिमान आ जाता है। इसी प्रकार किसी ने कहा कि तुम्हारी जाति तो बड़ी अच्छी है, तुम्हारा वर्णाश्रम बहुत ऊँचा है, तुम बहुत बड़े धनी हो, बड़े भारी यशस्वी हो तो उसका अभिमान आ जाता है। जो आरोपित पदार्थ हैं, वे ही अभिमान के जनक होते हैं। किन्तु जो भगवान् की ओर से आये हुए स्वाभाविक पदार्थ हैं वे अभिमान उत्पन्न नहीं करते हैं। ये बढ़िया, घटिया भी बाहर से ही आरोपित होते हैं।

इसलिये देहाभिमान छोड़ना हो तो जन्म लेने के बाद आपको जितने अध्यारोप ग्रहण करने पड़े हैं, उन्हें आप छोड़ते जाइये और पहले जैसे माँ के पेट में थे, उसके पहले जैसे पिता के बीज में थे, उसके पहले अन्न में जैसे थे और उसके पहले जैसे सूर्य-चन्द्रमा की किरणों में थे, उनकी ओर अन्तर्मुख, अन्तर्मुख, अन्तर्मुख होते जाइये। देह में अभिमान नहीं है, इसमें जो कल्पनाएँ बैठा दी गयी हैं कि तुम शैव हो, शाक्त हो, ईसाई हो, मुस्लिम हो, हिन्दू हो, जैन हो, पारसी हो, इन कल्पनाओं ने ही अभिमान उत्पन्न करके लोगों को वैमनस्य के मार्ग पर लगाया है।

हाँ, इन कल्पनाओं का आप सदुपयोग कीजिये। एक पण्डितजी हैं, उनसे किसी ने जाकर कहा कि पण्डित जी, हमारे मुकद्दमे में झूठी गवाही दे दीजिये, आपको इतना रुपया देंगे। पण्डितजी ने कहा कि निकल जा यहाँ से, मैं ब्राह्मण हूँ, प्रतिदिन सन्ध्या-वन्दन करता हूँ, गायत्री का जप करता हूँ, मेरा काम क्या झूठी गवाही देना है? वह आदमी लौट गया और पण्डितजी झूठी गवाही देने से बच गये।

इसलिये ब्राह्मणत्व के अभिमान ने जहाँ झूठ बोलने से पण्डितजी की रक्षा की, वहाँ तो उसका सदुपयोग हो गया, किन्तु जहाँ किसी को पण्डित जी कहें कि तू शूद्र है, मैं ब्राह्मण हूँ- यहाँ जो ब्राह्मण-पने का अभिमान है, उसने शूद्र के तिरस्कार में अपने को प्रवृत्त किया। इसलिये यह अभिमान बिलकुल गलत है।

इसलिये पहले तो अभिमान का दुरुपयोग मत कीजिये और उसके बाद भगवान् की अखण्ड सत्ता को देखिये।

ईश्वर के सामने जाने पर सब अभिमान मिट जाते हैं और विवेक करने पर विदित होता है कि अभिमान देह का नहीं, देह में जो लोगों ने ठूँस-ठूँसकर बातें भर दी हैं, उन्हीं का होता है। इसलिये अभिमान निराधार है और सर्वथा त्याज्य है।

: : 15 : :

अनपायनी भक्ति

देखो, प्रेम ऐसा होना चाहिये जो क्षण-क्षण बढ़े -

छिनहि बढ़ै छिन ऊतरे सो तो प्रेम न होय।

जो प्रेम क्षणभर में बढ़ जाता है और क्षणभर में घट जाता है, उसका नाम प्रेम नहीं है। प्रेम तो प्रतिक्षण वर्धमान- बढ़ता ही रहता है। ऐसी ही प्रीति होनी चाहिये।

इसलिये भक्त लोग चाहते हैं कि भगवान् के चरणों में हमारी ऐसी भक्ति हो जो बढ़ती रहे। भक्ति माने प्रीति-विशिष्ट वृत्ति। जो प्रेमरस से सराबोर अपने अन्तःकरण की वृत्ति है, उसी को भक्ति कहते हैं। उसमें योग के समान अभ्यास एवं वैराग्य की प्रधानता नहीं है और वह धर्मानुष्ठान के समान कोई क्रिया-कलाप भी नहीं है। जो वृत्ति अपने हृदय में भगवान् के प्रति प्रीतिरस से सराबोर है और बारम्बार अपने इष्टदेव का स्पर्श करने वाली, आलिंगन करने वाली है, उसी को 'भक्ति' कहते हैं।

वह भक्ति अनपायनी हो- इसका अर्थ होता है कि उसमें अपाय न हो। अपाय माने नाश भी होता है और श्वास भी होता है। हमारी भक्ति भगवान् के चरणों में हो और वह दिनों-दिन बढ़ती जाये, कभी घटे नहीं। इसी की कामना करते हुये तुलसीदासजी कहते हैं-

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरवान।
जनम-जनम रति रामपद यह वरदान न आन।।

यह नहीं कि हम भगवान् की भक्ति करें, उनकी लीला-कथा सुनें और कहें कि यह कथा तो एक अधूरी चीज है, इससे हमें मोक्ष मिल जाये तो ठीक है। अरे भाई, तुम जिस समय कथा सुनते हो, उस समय मुक्त ही रहते हो।

यदि यह कहो कि हम कथा सुनकर यज्ञशाला में जायें, धर्म करें, तो आपने कथा को अधूरी कर दिया। कथा सुनना ही क्या सबसे बढ़िया वस्तु नहीं है कि हम भगवान् की लीला सुन रहे हैं, उनके चरित्र का चिन्तन कर रहे हैं। और, यदि कहो कि हम कथा सुनेंगे तो हमें स्वर्ग मिलेगा, भोग मिलेगा तो भाई, भगवान् की भक्ति करके उनसे मोक्ष मत खरीदो। भक्ति पैसा देने जैसी चीज और मोक्ष उसके बदले में लड्डू पाने जैसी चीज नहीं है। हमें भोग मिले, मोक्ष मिले और इसके लिये हम यज्ञशाला में जाकर धर्म करें- यह भक्ति का उद्देश्य नहीं है। पहले लोग भगवान् की भक्ति करते थे भगवान् से मिलने के लिये, भगवान् का ज्ञान प्राप्त करने के लिये, अन्तःकरण की शक्ति के लिये। भक्ति से कुछ पाना- यह अभीष्ट नहीं होता था। लेकिन अब जब से कलियुग आ गया है, तब से लोग भक्ति करके धर्म और मोक्ष चाहने वाले भी कम हो गये हैं, अब तो अर्थ-काम चाहने वाले ही ज्यादा मिलते हैं, जो कहते हैं कि हम भगवान् की लीला देखें-करें-करायेंगे, कथा सुनें-सुनायेंगे तो उसके द्वारा हमें अर्थ की प्राप्ति होगी। यह कलियुग का माहात्म्य है कि भगवान् की भक्तिस्वरूपा जो कथा है, उससे हम अर्थ, काम की प्राप्ति चाहते हैं। अरे भाई, भगवान् की भगवत्स्वरूपा कथा के द्वारा हमें अर्थ-काम की कौन कहे, धर्म और मोक्ष की भी अभिलाषा नहीं करनी चाहिये। भागवत के दसवें स्कन्ध में कहा गया है कि-

न परिलषन्ति केचिदपवर्गमपीश्वर ते।
चरणसरोज-हंस-कुलसङ्गविसृष्टगृहाः।।

(10.87.21)

वे लोग अपवर्ग भी नहीं चाहते हैं, जिनके हृदय में भगवान् की कथा का प्रेम, भक्ति आजाती है। जब हम भक्ति के बदले कुछ और चाहने लगते हैं तो वह भक्ति नौकर की भक्ति हो जाती है, सहज भक्ति नहीं रहती है। इसलिये हे भगवान्! ऐसी कृपा करो कि हमारे मनमें तुम्हारी भक्ति करके अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष-कुछ भी पाने की इच्छा न हो।

यद्यपि भगवान् कल्पतरु हैं, भागवत कल्पतरु है और भक्ति

भी कल्पतरु है- उससे आप जो माँगेंगे वह सब आपको मिलेगा, फिर भी भक्ति को ही माँगिये। भक्ति से भक्ति को बढ़ाते रहिये। 'अनपायनी' का अर्थ यह है कि भक्ति कभी हम से दूर न हो, उसका ह्रास न हो और वह दिन-दूनी, रात- चौगुनी भगवान् के चरणों में बढ़ती जाये। ऐसी भक्ति को 'अनपायनी' भक्ति कहते हैं।

: : 16 : :

गीता सन्देश

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि-

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।

(14.25)

अव्यभिचारेण- एक क्षण के लिये भी प्रीति व्यभिचरित न हो।

यहाँ 'अव्यभिचार' शब्द का अर्थ है कि एक मात्र भगवान् में ही अपनी भक्ति लगी रहे, दूसरे की ओर न जाये। बहुत करके हमारी जो भक्ति है, वह अपने व्यक्तित्व की प्रधानता से ही रहती है। जैसे हम अपनी देह को धोते हैं, पोंछते हैं, श्रृंगार करते हैं और इससे सम्बन्ध रखने वालों को भी सजाते-सँवारते हैं, वैसा भक्ति में नहीं होता। भक्ति तो वह है जो भगवान् को ही सँवारती-सिंगारती है। भगवान् को चन्दन लगाना, माला पहनाना, भोग लगाना, पंखा झलना दिन-रात में, और भी जो काम हों उन्हें करना, यहाँ तक कि हम शौचाचार भी इसलिये करते हैं कि भक्ति करने में सुविधा होगी। भगवान् की सेवा के लिये पहले से ही तत्पर हो जाना चाहिये और ऐसा वेश लेकर भगवान् के सामने जाना चाहिये कि हमें देखकर भगवान् प्रसन्न हो जायें।

यदि हम मलिन वेश लेकर भगवान् के सामने जायेंगे तो भगवान् को हमारी मलिनता दूर करने के लिये संकल्प करना पड़ेगा और इसमें भी उनको श्रम होगा। इसलिये हमें स्वच्छ, सुन्दर, निर्मल और अपनी सेवा के योग्य बनाने में भगवान् को अधिक परिश्रम न करना पड़े- ऐसा स्वच्छ सुन्दर वेश बनाकर भगवान् के सामने उपस्थित होना चाहिये। यह नहीं कि आओ मैला कपड़ा पहनकर चलें, बाल

बिखेरकर चलें, गन्दे-रूप में चलें तो भगवान् हमारी सफाई करेंगे। नहीं, जहाँ तक हो सके, भक्त भगवान् को श्रम न दे और स्वयं अपनी ओर से स्वच्छ-सुन्दर-मधुर बनकर भगवान् के सामने जाये कि उसे देखते ही भगवान् एक बार मुस्करा दें, एक बार प्यार- भरी आँखों से देख लें, और एक बार दोनों हाथों से पकड़कर हृदय से लगा लें। भक्ति में भगवान् के सिवाय किसी दूसरे का सहारा, आश्रय, शरणागति वर्जित है। मंथरा ने कैकयी को अपनी शरण में ले लिया और कैकयी बिचारी मंथरा जैसी हीन की शरणागति लेकर मारी गयी। दशरथ जी ने कैकयी की शरण ले ली तो उनका मनोरथ पूरा नहीं हुआ- भगवान् रामचन्द्र ने समुद्र की शरण ली तो उनका काम नहीं बना। अतः जो भगवान् सर्वोत्कृष्ट हैं उन्हीं की शरण लेनी चाहिये, उन्हीं से निवेदन करना चाहिये और उन्हीं की भक्ति करनी चाहिये। इसमें एक बड़ा लाभ यह है कि हमें जने-जने में आसक्ति हो जाती है, चीजों - वस्तुओं और हीरे-मोती में आसक्ति हो जाती है, किसी क्रिया में आसक्ति हो जाती है कि हम तो यही करेंगे, किसी व्यक्ति में आसक्ति हो जाती है कि हम तो इन्हीं के साथ रहेंगे- वह छूट जाती है। यदि भगवान् से हमारी प्रीति हो जाये तो संसार के प्रति हमारी जो आसक्ति है, वह सर्वथा छूट जाती है।

: : 17 : :

श्रीकृष्ण लीला में आदर्श

प्रश्न– महाराजश्री, श्रीमद्भागवत में भगवान् श्रीकृष्ण की दिनचर्या का वर्णन है, उसमें-से कौन-सी दिनचर्या हमारे लिये उपयोगी है? इसपर प्रकाश डालने की कृपा करें।

उत्तर– श्रीकृष्ण प्रातःकाल उठकर सर्वप्रथम बिना नहाये-धोये अपने ब्रह्मस्वरूप का ध्यान करते थे कि इस दृश्यमान प्रपंच में मेरे सिवाय दूसरा कोई नहीं है और मैं ही स्वयं-प्रकाश अद्वितीय साक्षात् ब्रह्म हूँ। उसके बाद उठते थे तो अपने नित्य-कर्म करके स्नान, सन्ध या-वन्दन, देवपूजा, जप आदि सब करते थे। फिर प्रतिदिन दान करने का तो श्रीकृष्ण का ऐसा व्रत था कि कहा गया है-

बद्वं बद्वं दिने दिने।

(10.70.9)

रोज दान करते थे भगवान् श्रीकृष्ण और वह भी बहुत बड़ी पर्याप्त मात्रा में। तो आप श्रीकृष्ण की दिनचर्या में-से यदि ब्रह्म-ध यान ग्रहण करें तो बहुत बढ़िया होगा। इसके अतिरिक्त आप स्नान, सन्ध्या-वन्दन तथा पवित्रता आदि का पालन करें तो वह भी बहुत बढ़िया है। यदि आप प्रतिदिन दान करें तब तो फिर कहना ही क्या! दान के लिये आपके पास धन न हो तो किसी प्यासे को एक गिलास जल तो दे ही सकते हैं, चार दाने चने के भी दे सकते हैं, आप अपनी वाणी से सत्कार कर सकते हैं। प्रति सायंकाल आप सोच लीजिये कि आज मैंने एक आदमी को, दो आदमी को, थोड़े सुख का दान किया कि नहीं! मुस्कुराकर किसी से बात की कि नहीं! प्रेम की आँख

से किसी को देखा कि नहीं। मीठी वाणी बोली कि नहीं! आप रुपये-पैसे के दान का ही ख्याल मत कीजिये, वह तो जिसके हाथ में है, वे छोड़ना जरा कम पसन्द करते हैं। इसलिये आपकी वश की जो चीज है, वही कीजिये। आप दूसरों को आदर दीजिये, सद्भावना का दान दीजिये। आप किसी को अपना बड़प्पन न दिखाकर, सबके साथ मिलकर रहिये, उन्हें समता का दान दीजिये। यह सब भगवान् श्रीकृष्ण की जीवन-चर्या में है। आप चाहें तो इस प्रसंग का अध्ययन करके उनके अन्य सद्गुणों का भी अनुकरण कर सकते हैं।

: : 18 : :

भगवान् की मंगलमयी लीला

प्रश्न– महाराजश्री, आपसे प्रार्थना है कि आप हमारे हृदय में बस जाइये और ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि हम आपको और भगवान् को कभी न भूलें।

उत्तर– देखो भाई, आपके हृदय में बसना तो मेरे वश की बात नहीं है। हाँ, आप चाहें तो अपने हृदय में मुझे बसा सकते हैं। जिसे आप अपने हृदय में बसायेंगे, वह आपका ही होकर रहेगा। इसलिये हृदय में बसाना तो आपका काम है, मेरा नहीं।

एक बात जरूर है, यदि आपको अपने हृदय में बसाना ही हो साक्षात् परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर को अपने हृदय में बसाइये। वही साक्षात् परिपूर्ण है और आपको भरपूर कर देगा।

एक बार जीवने भगवान् के सामने यह प्रश्न उपस्थित कर दिया कि प्रभु, तुम तो शुद्ध-बुद्ध-मुक्त हो और हम लोग संसार में रचे-पचे हैं तथा कभी-कभी गलत काम भी कर बैठते हैं, फिर हमारा-तुम्हारा मिलना कैसे हो? भगवान् ने उत्तर दिया कि नहीं भैया, मैं तुम्हारा भाई हूँ और तुम्हारे साथ मिलकर, जैसे तुम काम करते हो-वैसे काम मैं भी करता हूँ। इसलिये तुम मुझे अपने से अलग मत समझो। मैं तुम्हारा सखा हूँ, तुम मेरे सखा हो। मैं किसी भी परिस्थिति में तुम्हें छोड़ नहीं सकता- चाहे तुम चोर की स्थिति में हो, चाहे छेड़-छाड़ की स्थिति में हो, चाहे पलायन की स्थिति में हो, चाहे संघर्ष की स्थिति में हो और चाहे मृत्यु ही तुम्हारे सामने आकर उपस्थित हो जाये। मैं सदा तुम्हारे साथ हूँ। जैसे तुम हो वैसा ही मैं हूँ, और जैसा मैं

हूँ, वैसे ही तुम हो।

तो भगवान् श्रीकृष्ण का जो साधारणीकरण है, हमारे जीवन के साथ एकीकरण है, वह उनकी ऐसी लीला है, जो मुझे उनके ईश्वरत्व से, ऐश्वर्य से अलग परम माधुर्यमयी मालूम होती है। लेकिन आपके मनमें उनकी कोई और लीला बसी हुई हो तो आप उसी को मानिये, उसी का ध्यान कीजिये। क्योंकि भगवान् की प्रत्येक लीला मंगलमयी है।

: : 19 : :

रुचि और आसक्ति

रुचि किसमें है? अपनी रुचि को समझना कठिन पड़ता है। मालूम पड़ता है कि हमको दर्शन-शास्त्र में रुचि है, लेकिन जब कहानी की किताब मिलती है तो उसमें मन ऐसा लगता है कि दर्शन-शास्त्र रखा ही रह जाता है। इससे मालूम पड़ता है कि रुचि कहाँ है? रुचि भजन में जब होती है तो स्वाद आने लगता है। भजन माने मन-ही-मन भगवत्सेवन। **'भजनं नाम रसनम्'** जैसे लोगों को चाट खाने में मजा आता है, उसी तरह से जब भगवान् का भजन करने लगते हैं तो मजा आता है। मथुरा के चौबे जैसे रबड़ी खाने में मजा लेते हैं, जैसे खुरचन खाने में मजा लेते हैं, वैसे ही जब भगवान् के भजन में मजा आने लगे और आसक्ति हो भगवान् में; तो आसक्ति का विषय भगवान् हैं और उनकी सेवा में, भजन में रुचि है।

रुचि और आसक्ति, ये दो नहीं हैं। पहले की अवस्था को रुचि बोलते हैं और उत्तर अवस्था को आसक्ति बोलते हैं। जैसे अधौटा और मलाई-एक ही चीज है, दूध ही है दोनों। जब भगवान् में आसक्ति होती है तो हृदय निर्मल हो जाता है। आसक्ति माने चिपक जाना। मन चिपक गया तो आसक्ति। आसक्ति हृदय के शीशे को ऐसा स्वच्छ बना देती है कि उसमें भगवान् का प्रतिबिम्ब दिखने लगता है। भगवान् में मन लगाने का संकल्प नहीं करना पड़ता, प्रयत्न नहीं करना पड़ता। स्वयं मन कब चला गया भगवान् में, इसका पता नहीं चलता। मन कहीं दूसरी जगह टिकता ही नहीं है। जब देखो भगवान् में! जब देखो भगवान् में!!

2)21 2)21 2)21

:: 20 ::

अध्यात्म का स्वातन्त्र्य

भौतिक वस्तु की प्राप्ति में मनुष्य का स्वातन्त्र्य कभी नहीं हो सकता। एक बगीचे में अँगूर का फल लगा हो, तो उसमें तुम स्वतंत्र नहीं हो कि तोड़कर ले आओ और खा जाओ। वह राजा का है कि सेठ का है? वह अभी पका है कि नहीं पका है? उसमें तुम्हारा स्वातन्त्र्य नहीं है। अँगूर को देखकर तुम्हारी जीभ पर पानी आवे और जब चाहे उसको तोड़कर खा लोगे? चोरी से तोड़ोगे तो पुलिस पकड़ कर ले जायेगी कि नहीं? अधर्म से तोड़ोगे तो यमपुरी देखनी पड़ेगी। तो भौतिक रस जो होगा उसमें राजा की अनुकूलता चाहिये, धर्म की अनुकूलता चाहिये, अपना स्वत्व चाहिये; तब न आनन्द ले सकते हो! अतः भौतिक वस्तु में स्वातन्त्र्य नहीं है।

अब देखो, आधिदैविक रस में देवता के अनुग्रह की जरूरत पड़ती है। देवता की अनुकूलता चाहिये। परन्तु, आध्यात्मिक-रस जिसे 'आत्म-रस' बोलते हैं, उसमें न समाज की अनुकूलता चाहिये, न उसमें राजा के कानून को देखने की जरूरत है, न किसी से इजाजत लेने की जरूरत है। यह तो 'आत्म-रस' है, अपने आप में ही प्रकट होने वाला है। यह जो आत्म-रस की अनुभूति है, यह परम स्वातन्त्र्य है। सबसे बड़ी चीज इसमें यही है कि हम आँख बन्द रखें कि खुली, अपने हृदय में भगवद्-रस है। यह जो आध्यात्मिक प्रीति है, यह तो आत्म-रस का विकास है, आत्म-रस का उल्लास है।

उल्लसित ज्ञान का नाम नृत्य है, नृत्यत ज्ञान का नाम रस है। अपना ज्ञान स्वरूप आत्मा जब आनन्द में मग्न होकर स्वातंत्र्येण नृत्य करता है, तब आध्यात्मिक-रस का अनुभव होता है- आनन्द-ही-आनन्द! बाहर आनन्द, भीतर आनन्द! आगे आनन्द, पीछे आनन्द! ऊपर आनन्द, नीचे आनन्द! आनन्द का समुद्र, आनन्द की लहर, आनन्द की बौछार, आनन्द की हवा, आनन्द की तरंग, आनन्द का कण, आनन्द का स्पर्श, आनन्द की ध्वनि! नारायण, इसमें समाज की, कानून की, हकदारी की कोई व्यवस्था नहीं; क्योंकि यह तो अपना आपा ही है। इसी आनन्द की पराकाष्ठा का नाम 'श्रीकृष्ण' है, 'ब्रह्म' है। 'आत्मा' है।

'रसो वै सः'।

: : 21 : :

ईश्वर की अप्राप्ति का कारण

ईश्वर के सम्बन्ध में यह बात ध्यान में रख लें कि वह इस काल में, वर्तमान में न हो तो किसी काल में नहीं होगा; क्योंकि वह काल से कट गया, परिच्छिन्न हो गया। वह इस स्थान, देश में न हो तो किसी स्थान में नहीं होगा; क्योंकि तब वह देश से कट गया, परिच्छिन्न हो गया। वह इन्हीं रूपों-विषयों में न हो तो किन्हीं रूपों में नहीं होगा; क्योंकि तब वह विषय परिच्छिन्न हो गया। हम लोगों में ईश्वर न हो तो फिर कहाँ हो सकता है? ईश्वर का अभी, यहीं और इन्हीं रूपों में होना आवश्यक है। ऐसी अवस्था में ईश्वर की अप्राप्ति का कारण क्या है? उसको न पहचानना।

इसके लिये हमारे अन्तःकरण में, हमारी बुद्धि में एक ऐसी ज्ञान-वृत्ति का उदय होना चाहिये, जिससे हम परमात्मा को पहचानें। हमारे चित्त में जो परमात्मा के विषय में अज्ञान है, वह दूर हो। नारायण, ईश्वर है तो सभी के हृदय में, किन्तु वह सुप्त निष्क्रिय है। अतः अविद्या को निवृत्त करने वाला, विक्षेप का निवर्तक ईश्वर हमारे हृदय में प्रकट हो, इसके लिये हमें कुछ करना पड़ेगा। तो देखो, अधिभूत रूप में यह ईश्वर प्रकट ही है, विराट् विश्व ईश्वर ही है और अधिदैव रूप में भी ईश्वर ही इसका नियमन कर रहा है, किन्तु अज्ञान की निवृत्ति के लिये अध्यात्म रूप में ईश्वर के प्रकट होने की आवश्यकता है। वृत्त्यारूढ़ हुए बिना ब्रह्म अविद्या निवर्तक होता नहीं। तो जब मनुष्य के जीवन में अन्तःकरण की शुद्धि तथा प्रकाशित वृत्ति का उदय होता है, जब दोनों एकत्र होते हैं, तभी परमात्मा का आविर्भाव होता है।

: : 22 : :

शरणागति : विभिन्न सम्प्रदाय

नारायण, शरणागति जैन-सम्प्रदाय में भी है। जैन भाषा में इसे **'आत्त-शरणो-भव'** बोलते हैं। आत्त माने आत्मा। यानी आत्मा की शरण में रहो। उनका कहना है कि यह सृष्टि पुद्‌गलों से बनी हुई है और इसमें अनादिकाल से संस्कारों की धारा बह रही है और जीव जन्म से मृत्यु और मृत्यु से जन्म में प्रभावित हो रहा है। अतः इनका आश्रय छोड़कर अपनी उस आत्मा की शरण लो, जिसमें न राग है, न द्वेष है, न जन्म है और न मृत्यु है। इसको **'आत्त शरणो भव'** बोलते हैं। जैन-धर्म में महावीर की, ऋषभदेव की, पार्श्वनाथ की शरण मुख्य नहीं है। वहाँ आत्म-शरण होना ही मुख्य है। जो भी आत्म-शरण, आत्म-निष्ठ हो गया, वह निर्भार होने के कारण, सिद्ध-शिला पर बैठकर अलोकाकाश जाने का अधिकारी हो गया।

शरणागति बुद्ध-धर्म में भी है। पर, वहाँ शरणागति जरा दूसरे ढंग की है। इसमें-**बुद्धं शरणं गच्छामि, धर्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि** है। तत्त्व-दृष्टि से बुद्ध की शरणागति है, साधन-दृष्टि से धर्म की शरणागति है और आचार-दृष्टि से संघ की शरणागति है।

शरण शब्द का प्रयोग बौद्ध-धर्म में भी है और जैन-धर्म में भी है और वेदान्त में भी है ही। पर विशेषता यह है कि बौद्ध-धर्म में बुद्ध-शरण है और जैन-धर्म में आत्म-शरण है। बुद्ध की शरण में हो जाना बुद्ध की करुणा की पराकाष्ठा है और अपनी शरण में आप हो जाना पौरुष की पराकाष्ठा है। करुणा-प्रधान बौद्ध-धर्म है और अहिंसा-प्रधान जैन-धर्म है। न्याय-वैशेषिक में शरणागति का कोई

प्रसंग ही नहीं है। उसमें तो सभी पदार्थ ऐसे हैं कि यदि साधर्म्य-वैध ार्म्य के द्वारा उनका ज्ञान ठीक-ठीक हो जाये तो मुक्ति हो जाती है। उसमें कोई लोक नहीं है। सांख्य-योग में साधन के रूप में ईश्वर प्रणिधान एवं अन्ततः आत्म-स्थिति ही शरण है। पूर्व- मीमांसा और वेदान्त में अन्तःकरण की शुद्धि के द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार मानते हैं। अब भक्ति-दर्शन बड़ा विलक्षण है। उनका मानना है कि भगवान् का नाम शरण है और दूसरा जो शरण-भाव है सो अर्थात् एक, शरण-रूप भगवान् और दूसरा शरणागति का भाव-माने उपाय और उपेय, साधन और साध्य दोनों प्रभु ही हैं। वही मिलने वाले और वही मिलाने वाले।

: : 23 : :

देवो भूत्वा देवं यजेत्

देखो, किसी बड़े आदमी से मिलना हो और एकदम गन्दी पोशाक पहनकर उसके पास जाओगे क्या? अब तुम चाहते तो हो ईश्वर से मिलना और ये जो तुमने पहनी है गन्दी पोशाक वह काहे की? बोले की चमड़े की। शरीर में अंगराग, स्नो काहे का लगाया? चर्बी का स्नो लगाया। लिपस्टिक काहे का लगाया? बोले की खून का। आँतों की पर्स ले-लेकर कहाँ जा रहे हैं? बोले कि ईश्वर से मिलने के लिए जा रहे हैं।

तो जब तक स्थूल शरीर से अपने अहं को ऊपर नहीं उठावेंगे, तब तक ईश्वर से भला कैसे मिल पावेंगे? इसमें एक बात और बता देते हैं! नारायण, इसमें सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार का कोई भेद नहीं है। साकार भगवान् का - राम, कृष्णादि का दर्शन भी गन्दी पोशाक से नहीं होगा! यह पोशाक छोड़कर जब भावमय शरीर बनता है, उस भावमय शरीर से उनका दर्शन होता है। निराकार में स्थिति भी इस पोशाक में नहीं होती। इसको छोड़कर समाधि लगानी पड़ती है, तदाकार-वृत्ति करनी पड़ती है। कर्मकाण्ड में यह बात आती है कि -

'देवो भूत्वा देवं यजेत्'

अर्थात् देवता होकर देवता का यजन करना पड़ता है।

अब चोरी करके आवेंगे और महात्मा से कहेंगे कि हमको ब्रह्मज्ञान का उपदेश कर दो। तो कैसे बनेगा? पहले चोर शरीर को छोड़ो। व्यभिचारी शरीर को छोड़ो। उससे अलग हो जाओ। यह लोभी, कामी, क्रोधी, यह जो हड्डी, मांस, चाम, विष्ठा, मूत्र का पुलता है-

इसमें तो 'मैं' करके बैठे हैं। कहाँ साकार मिले, कहाँ निराकार मिले, कहाँ समाधि लगे और कहाँ ब्रह्मज्ञान होवे?

इसलिए, पहली शर्त परमात्मा के मार्ग में चलने की यह है कि हड्डी, मांस, चाम, विष्ठा, मूत्र की जो पोटली है, इसमें से अपने 'मैं' को निकाल लो। इसमें से अपने 'मैं' को निकाल कर देखोगे कि तुम्हारा 'मैं' तो व्यापक हो गया, तुम्हारा 'मैं' तो द्रष्टा है, भरपूर है। देहाभिमान को छोड़ते ही इस द्रष्टा की दृष्टि कितनी बड़ी है कि उसमें अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों का नियन्ता अन्तर्यामी ईश्वर और नियम्यजीव, दोनों उस दृष्टि के पर्दे पर आकर नाचने लगते हैं। यह अखण्डतत्त्व के साक्षात्कार की विद्या है।

: : 24 : :

गुणेषु सक्तं बन्धाय रतं वा पुंसि मुक्तये

'गुणेषु सक्तं बन्धाय रतं वा पुंसि मुक्तये'।

(श्रीमद्भागवत 3/25/25)

'यदि विषयों में आसक्ति करोगे तो संसार में बंधन होगा और भगवान् से प्रेम करोगे तो मुक्ति मिलेगी'!

संसार रस्सी से नहीं बाँधता किसी को! यह तो आसक्ति से बाँधता है। यदि संसार में प्रेम हो गया तो बँधे रहोगे संसार में और परम पुरुष परमात्मा से प्रेम हो गया तो मुक्ति हो जायेगी। चलना प्रेम के मार्ग में और पाँव फूंक- फूंककर रखना, यह नहीं होता है। जब रुचि पैदा होती है भगवान् में, तो प्यास बढ़ जाती है; फिर यह नहीं होता कभी कि सुनने में क्या रखा है? यह अन-प्यासे का लक्षण है। जिसको भीतर से प्यास नहीं लगी है, वही ऐसा सोचता है। नहीं तो भगवान् का एक-एक नाम, एक-एक गुणानुवाद, लीला, उनका स्वभाव, उनका प्रभाव, उनका तत्त्व, उनका रहस्य, उनका स्वरूप-इन सबका श्रवण करने में ऐसी रुचि होती है कि आदमी को भोजन अच्छा नहीं लगता, कथा अच्छी लगती है। शर्बत पीना अच्छा नहीं लगता, कथा अच्छी लगती है। डर नहीं लगता किसी का, शोक नहीं आता; परन्तु इन साधन-भजन से वंचित मनुष्य दूसरे की याद करके रो रहे हैं।

अरे! भगवान् तो तुम्हारे दिल में खड़े होकर, दोनों हाथ फैलाकर कह रहे हैं-'आओ, आओ! हमारे हृदय से लग जाओ'! वह तो प्यार करने के लिये खड़े हैं और तुम रो रहे हो? किसके लिये? संसार के लिये! हे भगवान्!!

नारायण, जो एकबार भगवान् से जुड़ जाता है, उसको फिर संसार में मोह नहीं होता।

: : 25 : :

व्यावहारिकता और मानसिकता

हम यह जो जाग्रत् अवस्था देख रहे हैं, यह हमारा मन ही देख रहा है। रास्ता पार कर रहे हों और मन दूसरी जगह हो, तो कितने मील चले, इसका पता नहीं चलता। मन दूसरी जगह हो तो कितने घण्टे बीत गये, इसका पता नहीं चलता। मन दूसरी जगह हो तो क्या-क्या खा लिया और किन-किन से मिल लिया, इसका पता नहीं चलता। माने, हमें यह जाग्रत्-व्यवहार में जो वस्तुओं का पता चलता है, सुख और दुःख होता है; एक हमारा मित्र हो और ख्याल बन जाये कि 'यह हमारा शत्रु है;' एक हमारा शत्रु हो और ख्याल बन जाये कि 'यह हमारा मित्र है' तो शत्रु को देखकर दुःख होता है और मित्र को देखकर सुख होता है- दोनों मानसिक हैं।

नारायण, इस रहस्य को संसार के जीवन में जो कोई समझ ले तो वह कभी दुःखी नहीं होगा। क्या रहस्य है? हमको यह जो सुख-दुःख होता है, जितना भी होता है, जहाँ भी होता है, जब होता है, इस सुख-दुःख का जो रसायन बनता है, वह हृदय में बनता है। बाहर की चीज को निमित्त तो हम बना लेते हैं। हम ही कहते हैं कि-'आ बैल, मुझे मार।'

जिसके मिलने से हम सुखी होते हैं, संसार में कुछ लोग ऐसे होते हैं कि उसी के मिलने से दुःखी हो जाते हैं। और कुछ चीजें ऐसी होती हैं जिन के मिलने से हम दुःखी होते हैं संसार में, उन्हीं के मिलने से कई लोग सुखी हो जाते हैं। इसका मतलब हुआ कि चीज में हमने जो सुख-दुःख डाल रखा है, वह अपनी वासना के अनुसार डाल रखा है। अपनी भावना के अनुसार डाल रखा है। यदि हम अपनी भावना

को परिष्कृत कर लें, संस्कृत कर लें, शुद्ध कर लें, तो दुनिया में जितना सुख-दुःख हमको भोगना पड़ता है, उतना नहीं भोगना पड़े। दुःख तो हम बना-बनाकर भोगते हैं।

'प्रज्ञापराध एव एष दुःखमिति यत्'

इसने हमको हाथ क्यों नहीं जोड़ा? दुःख हो गया। अरे भाई! हाथ जोड़ना उसका काम है। ठीक समझता तो जोड़ता; ठीक नहीं समझा सो नहीं जोड़ा। अब इसकी फिकर तुम काहे को करते हो? नहीं, वह हमारा बेटा है। हमारे सामने हाथ नहीं जोड़ता? लो, दुःख मोल लिया अपने मन से!

नारायण कहो! दुनिया की चीजें- यह सोना, यह चाँदी, यह नोट- सब आते-जाते रहते हैं। दूसरा आदमी जो व्यवहार करता है, वह अपने भीतर की प्रेरणा से व्यवहार करता है। वह तुम्हारी प्रेरणा से तो व्यवहार करता नहीं है। जब तुम उसके व्यवहार के ठेकेदार बन जाओगे, पट्टेदार बन जाओगे, जज बन जाओगे कि यह हमारे कहे अनुसार व्यवहार करे; इतना ही नहीं, केवल हमारे कहे अनुसार ही नहीं, मन में तो हमारे हो और वैसा व्यवहार सामने वाला करे। अब तुम्हारा मन तुम्हारे शरीर में, उसका मन उसके शरीर में! सो जब तुम्हारे मन के अनुसार उसके शरीर से व्यवहार नहीं होता, तब तुमको दुःख होता है। तो इस संसार में जो सुख-दुःख का मामला है, यह समझने लायक है।

अपना मन ही हजार बार दुःख देता है और अपना मन ही हजार बार सुख देता है। अगर हम अपने मन को ठीक समझ लें, तो चाहे हजार आवे, हजार जाये! देखो, सट्टा खेलने वाले समझते हैं कि यह आना-जाना तो बिलकुल स्वाभाविक है। लाखों के घाटे में और लाखों के मुनाफे में उतने दुःखी-सुखी नहीं होते, जितने दुनियादार और लोग दुःखी-सुखी होते हैं। तो अपने मन को ठीक करना।

: : 26 : :

मन पर विजय प्राप्त करने की युक्ति

मन पर विजय प्राप्त करने के लिये **चार** युक्ति ध्यान में रखनी चाहिये-

अध्यात्मविद्याधिगमः साधु सङ्गतिरेव च।
वासनासंपरित्यागः प्राणस्पन्द निरोधनम्।
एतास्ता युक्त्या पुष्टः सन्ति चित्तजयेखिल।

1. **अध्यात्मविद्या-** माने पोथी में लिखी हुई नहीं। अध्यात्मविद्या माने आँख का देखना और हमारे मनका संकल्प। हाथ का उठना और हमारे मनकी स्थिति। पाँव का चलना और हमारा मन। और, मन और हमारी आत्मा। ये किस प्रकार सम्बद्ध होकर काम करते हैं! जैसे मोटर चलाने वाले ड्राइवर को मोटर की एक-एक मशीनरी का ज्ञान होवे, तब तो वह बिगड़ने पर उसको चालू कर लेगा और मशीनरी का ज्ञान न होवे तो बिगड़ने पर वह चालू नहीं कर सकता। इसी प्रकार यह हमारे शरीर का यंत्र किस प्रकार से चालू होता है- यह हमको आँख से देखने की, कान से सुनने की, नाक से सूँघने की जो प्रक्रिया है, मन के साथ जो इनका सम्बन्ध है, वह ज्ञात होना चाहिये। तब हम मनको एकाग्र कर सकेंगे।

2. **साधुसंगतिरेव** - जिन्होंने अपना मन लक्ष्य में लगाया हो, उनकी संगति होनी चाहिए।

3. **वासनासम्परित्यागः** - जो भिन्न-भिन्न प्रकार की वासनायें हैं, उनका त्याग होना चाहिए।

4. **प्राणस्पन्द निरोधनं** - प्राण को रोकने का सामर्थ्य होना चाहिए।

ये चार युक्ति मन को निरुद्ध करने के लिए प्रधान हैं। यदि युक्ति नहीं करोगे भाई, **'विना युक्तिमनिन्दितं'** बिना प्रशस्त युक्ति के अनुष्ठान के मन कभी एकाग्र नहीं हो सकता।